संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित
ऋषि प्रसाद
हिन्दी
अंक : १४९
मई २००५
मूल्य : रु. ६/-
बहते संसार के सुख-दुःख, आकर्षण-विकर्षण में
चट्टान की नाईं सम, निर्लिप्त रहना ही बहादुरी है ।
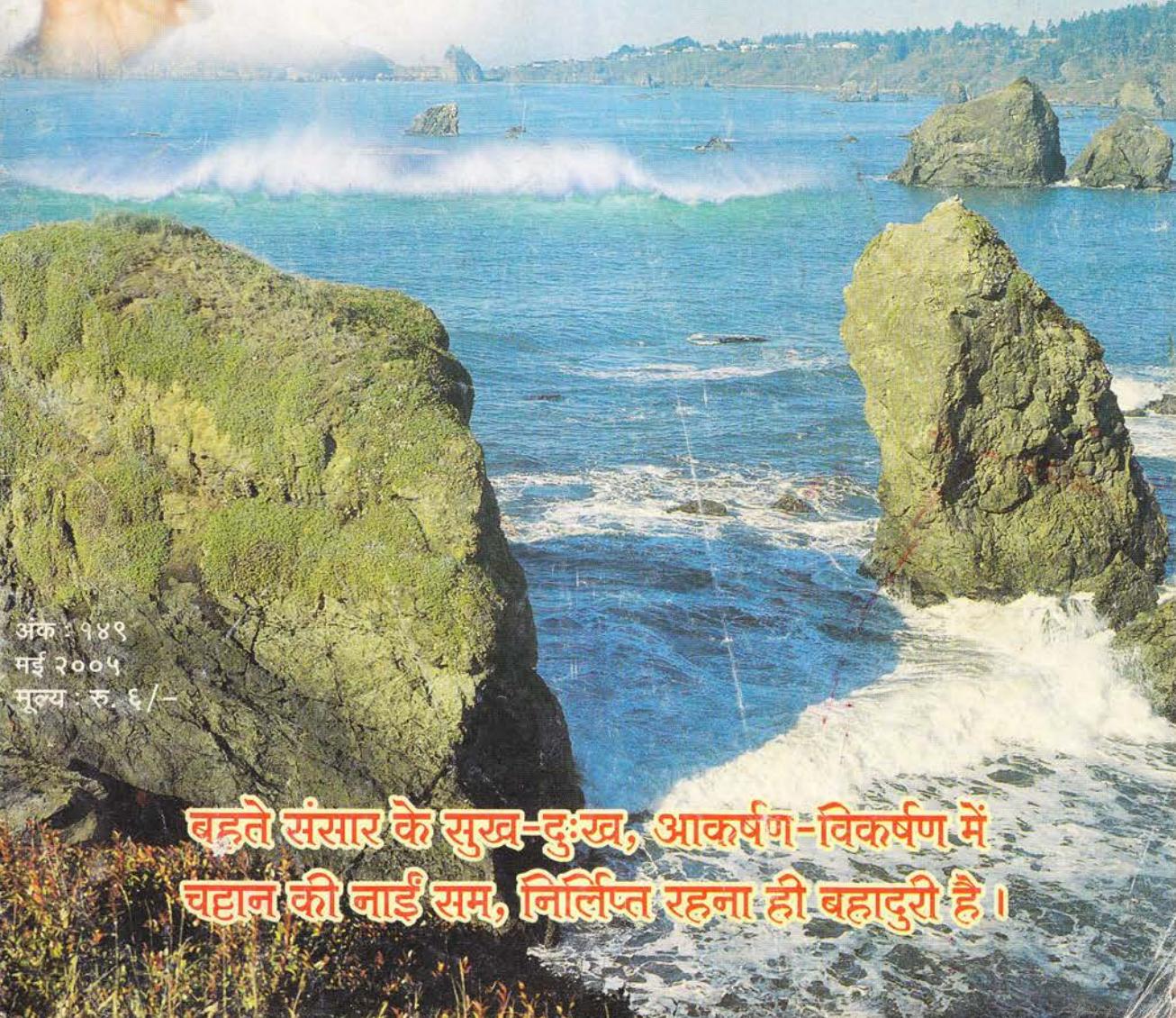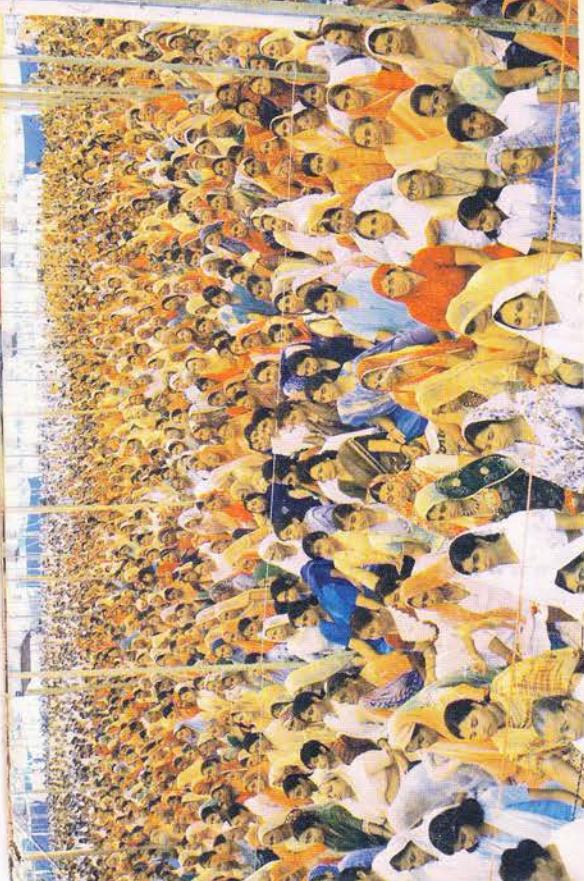
भगवन्नाम, ध्यान, कीर्तन रूपी कई मधुर रसों से युक्त पूज्य बापूजी का सत्संग वास्तव में अद्भुत सुधा-रस है !
इसका आस्वादन करते हुए जोधपुर (राज.) वासियों के बीच बैठे हैं राजस्थान के भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत।

भोजन, वस्त्र, बर्तन, मिठाई, नकद दक्षिणा आदि के साथ गर्मियों में धूप से रक्षा हेतु टोपियाँ और
दुःखों से रक्षा हेतु सत्संग-ध्यान-कीर्तन रूपी उपहार प्राप्त किया कोटड़ा (गुज.) के आदिवासियों ने।

वर्ष : १५ अंक : १४९ मई २००५ वैशाख-ज्येष्ठ, वि.सं.२०६२ मूल्य : रु. ६-००

ऋषि प्रसाद

गंगा माहात्म्य

ब्रह्मज्ञान और योगसामर्थ्य

अनुक्रम

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : हार्दिक वेबप्रिंट, राणीप और विनय प्रिंटिंग प्रेस, अमदावाद।
सम्पादक : श्री कौशिकभाई वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा

सदस्यता शुल्क

भारत में

(१) वार्षिक	रु. ५५/-
(२) द्विवार्षिक	रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक	रु. २००/-
(४) आजीवन	रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में

(१) वार्षिक	रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक	रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक	रु. ३००/-
(४) आजीवन	रु. ७५०/-

अन्य देशों में

(१) वार्षिक	US $ 20
(२) द्विवार्षिक	US $ 40
(३) पंचवार्षिक	US $ 80
(४) आजीवन	US $ 200

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक	पंचवार्षिक
भारत में	१२०	५००
नेपाल, भूटान व पाक में	१७५	७५०
अन्य देशों में	US$20	US$80

कार्यालय : 'ऋषि प्रसाद', श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
फोन : (०७९) २७५०५०१०-११.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction
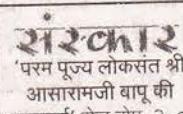
परिप्रश्नेन

अपने दोषों को खोजो। जो अपने दोष देख सकता है, वह कभी-न-कभी उन दोषों को दूर करने के लिए भी प्रयत्नशील होगा ही। ऐसे मनुष्य की उन्नति निश्चित है।
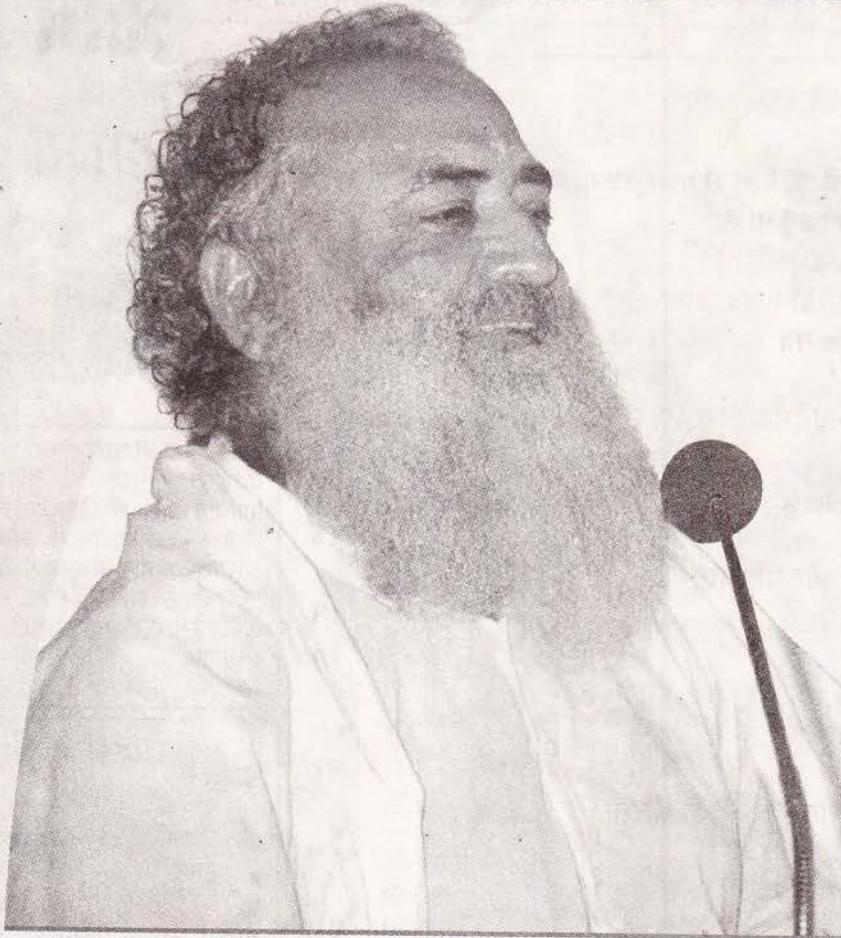
प्रश्न : पूज्य बापूजी ! जन्म-मरण का कारण क्या है ?

पूज्य बापूजी : जन्म-मरण का कारण पत्नी, पुत्र, परिवार, मित्र या कोई व्यक्ति नहीं है। उसका कारण है - शरीर और संसार में राग। राग का अंत होते ही भय, चिंता, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और जन्म-मरण का अंत हो जाता है, दुःखों का पूरा मूल ही कट जाता है। केवल राग के कारण ही जीव की दुर्दशा होती है। जीवन रागरहित हो गया तो वह योगी हो गया, भक्त हो गया, ज्ञानी हो गया, मुक्त हो गया।

प्रश्न : रागरहित होने के लिए क्या करना चाहिए ?

पूज्य बापूजी : राग सुख में ही तो होता है। अतः सुख लेने की अपेक्षा सुख देने के भाव से कार्य करो, भोग भोगने की अपेक्षा उनका सदुपयोग करो और नश्वर के राग को अपने शाश्वत, सुखस्वरूप आत्मा में ले आओ। राग से राग को मिटाओ।

तुलसी ममता राम से, समता सब संसार।
राग न द्वेष न दोष दुःख, दास गये भवपार॥

आत्मा में राग रखोगे और संसार में समतापूर्ण व्यवहार करोगे तो राग-द्वेष और दोषदर्शन से बच जाओगे। इससे राग क्षीण होता जायेगा। जितने अंश में राग क्षीण होता जायेगा, उतने अंश में सामर्थ्य आता जायेगा। मीराबाई कीर्तन करते-करते राग भूली और जहर अमृत हो गया, शबरी झाड़ू लगाते-लगाते राग भूली और रामजी द्वार पर आ गये। प्रह्लाद हरि को स्नेह करते-करते राग भूले और भगवान का नरसिंह रूप प्रकट हो गया, ध्रुव पिता की गोद में बैठने का राग भूलने के लिए हरि में राग करके हरिमय हुए तो

हरि प्रकट हो गये।

सबमें वासुदेव हैं इस भाव को दृढ़ करो और उस वासुदेव में स्थिति पाने के लिए लग जाओ, फिर मुक्ति के द्वार खुलने लगेंगे।

प्रश्न : आधुनिक भौतिकवाद के युग में मनुष्य की अशांति का क्या कारण है ?

पूज्य बापूजी : इस युग के मनुष्य की अशांति का कारण उसकी तमस्-आच्छादित बुद्धि है। तमस् से ढँकी हुई बुद्धि पाप को पुण्य, त्याज्य को ग्राह्य, अधर्म को धर्म बताती है, जिससे मनुष्य का जीवन दुष्प्रवृत्तियों में लग जाता है। तामसी बुद्धि से आसुरी प्रवृत्तियों को पोषण मिलता है, जिससे सभी विपरीत कर्म होने लगते हैं और सर्वत्र अशांति फैलती है। वैदिक सनातन सत्य धर्म, संयम और सत्त्वगुण से विमुख होकर शराबी-कबाबी-स्वार्थी होने के कारण ही लोग अशांत हुए हैं।

प्रश्न : पूज्यश्री ! फिर अशांति कैसे मिटे ?

पूज्य बापूजी : सूर्योदय से पूर्व स्नान, भ्रूमध्य में तिलक, 'श्रीमद्भगवद्गीता' का पाठ, ईश्वरप्रीत्यर्थ कर्म, सबकी गहराई में परमेश्वर की भावना, सत्संग और गुरुमंत्र का जप करना, सत्त्वगुण, सद्भाव एवं सज्जनता की अभिवृद्धि करना तथा आंतरिक सुख पाना - यह सुमार्ग है, अशांति से बचकर सुख-शांति पाने का मार्ग है।

जिस स्थान पर निवास करने से, जिस वातावरण में रहने से बुद्धि में तमस् बढ़ता हो, भोग-वासना एवं पाप-वासना बढ़ती हो, जिन पुस्तकों-पत्रिकाओं को पढ़ने से वृत्तियाँ दूषित होती हों, जिस खान-पान से मन में तमोगुण बढ़ता हो, जिस बात से भगवान व संतों के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न होती हो, जिन वस्त्रों को पहनने से भोगासक्ति उत्पन्न होती हो, जो व्यवहार या आजीविका का साधन चोरी, हिंसा से युक्त एवं दूसरों का अहित करनेवाला हो अर्थात् जो कुछ देखने, सुनने, वार्तालाप करने से विषय-भोगों में रुचि, आसक्ति बढ़ती हो और भगवान में अरुचि पैदा होती हो, उनका आप जितने अंश में त्याग करेंगे तथा उपरोक्त सुमार्ग का जितना अधिक अवलम्बन लेंगे, उतने ही अंश में आपकी प्रभु एवं प्रभु-प्रेमियों में प्रीति हो जायेगी और जीवन से अशांति दूर हो शांति, आनंद व माधुर्य बढ़ेगा।

प्रश्न : आज मनुष्य का जीवन बड़ा गतिमान हो गया है। वह शीघ्र प्रगति चाहता है। ऐसे में उसका शीघ्र कल्याण कैसे संभव है ?

पूज्य बापूजी : आज के गतिमान जीवन में मनुष्य का कल्याण तीन बातों से जल्दी हो सकता है।

पहली बात : सच्चे हृदय से हरि का नाम-स्मरण करो। 'श्रीरामचरितमानस' में आता है :

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥
(बा.कां. : २७.१)

अच्छे भाव से, कुभाव से, क्रोध से या आलस्य से, किसी भी तरह से यदि भगवान का नाम लिया जाता है तो दसों दिशाओं में मंगल होता है। फिर सच्चे हृदय से हरि का नाम-स्मरण करने पर कल्याण होने में संदेह ही क्या है ?

जपात् सिद्धिः जपात् सिद्धिः जपात् सिद्धिर्न संशयः।

भगवन्नाम का जप करते रहो, हरि का स्मरण करते रहो। इससे आपको अवश्य सिद्धि मिलेगी, आपका मन सात्त्विक होगा, पवित्र होगा, उसमें भगवद्रस प्रकट होने लगेगा।

दूसरी बात : प्राणिमात्र का मंगल चाहो। प्राणिमात्र को सुख पहुँचाने का भाव रखो।

हम किसीको आदर-सम्मान देते हैं तो हमें वही वापस लौटकर मिलता है और कई गुना होकर मिलता है। यदि आप दूसरों को सुख पहुँचाने का भाव रखोगे तो आपको भी अनायास ही सुख मिलेगा।

तीसरी बात : अपने दोष निकालने के लिए तत्पर रहो।

अपने दोषों को खोजो। जो अपने दोष देख सकता है, वह कभी-न-कभी उन दोषों को दूर करने के लिए भी प्रयत्नशील होगा ही। ऐसे मनुष्य की उन्नति निश्चित है। जो अपने दोष नहीं देख सकता वह मूर्ख है, किंतु सज्जनों और सद्गुरु के बताने पर भी जो अपना दोष स्वीकारता नहीं, सफाई देता रहता है वह तो महामूर्ख है।

जो अपने दोष निकालने के लिए तत्पर रहता है, वह इसी जन्म में निर्दोष नारायण का प्रसाद पाने में, अपना परम कल्याण करने में सक्षम हो जाता है।

प्रश्न : सत्संग से क्या लाभ होता है ?

पूज्य बापूजी : हमारा माना हुआ जो परिच्छिन्न व्यक्तित्व है, जीव का जो अहं है सत्संग से उसकी पोल खुल जाती है। जैसे प्याज की पर्तें उतारते जाओ तो भीतर से कुछ ठोस नहीं निकलेगा। उसमें केवल पर्तें ही पर्तें हैं। ऐसे ही जब तक सत्संग नहीं मिलता तब तक परिच्छिन्न 'मैं' में ठोसपना दिखता है। सत्संग मिलते ही उस 'मैं'पने की पर्तें हटती हैं और जीव को अपने चिदाकाशस्वरूप का दीदार हो जाता है, वह जीवन्मुक्ति का अनुभव कर लेता है।

तीन चीजों
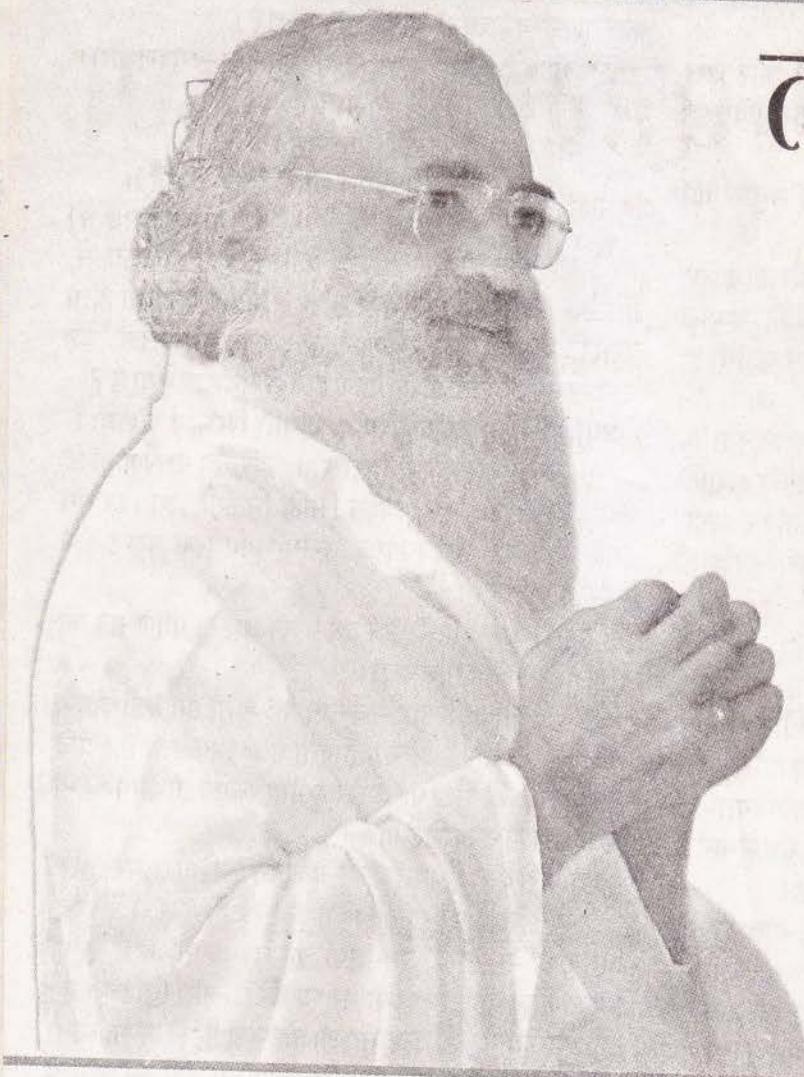
सद्भाव, वैराग्यभाव और शांतभाव इन तीन भावों को खूब पुष्ट करो। आप इनकी रक्षा करोगे तो ये आपकी रक्षा करके आपको संत तुकारामजी जैसा महापुरुष बना देंगे। आपका नाम भले तुकाराम नहीं होगा, परंतु जिस ऊँचाई पर वे पहुँच गये वहाँ पर आप भी पहुँच जाओगे। जहाँ मेरे लीलाशाहजी भगवान पहुँच गये, वहाँ आप भी पहुँच जाओगे।

(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

आप तीन चीजों का खूब ख्याल रखो। एक तो सत्संग के समय मन में जो बढ़िया भाव, सद्भाव पैदा होते हैं उनको पकड़ रखो, उनकी खूब रक्षा करो। चाहे किसी भी प्रकार का बलिदान देना पड़े लेकिन मन में अभी जो सद्भाव है, उसकी हम लोगों को रक्षा करनी है।

दूसरी बात है कि मन में वैराग्य का भाव उदित हो तो उसकी रक्षा करनी है। एक बार वैराग्य आ जाय संसार से, बेटे-बेटी के, पति या पत्नी के अथवा मित्रों के व्यवहार से और मन में भाव पैदा हो जाय कि 'धत् तेरे की ! संसार कपट का घर है, स्वार्थ का घर है।' तो फिर उस भाव की रक्षा करो। यह भाव आपको ऊपर उठने में मदद करेगा।

तीसरी बात है कि ध्यान-भजन में जो शांति मिलती है, उस शांत भाव की रक्षा करो। इस प्रकार सद्भाव, वैराग्यभाव और शांतभाव इन तीनों की रक्षा करो।

जब पुण्य जोर मारते हैं तब वैराग्य आता है, मन में सद्भाव आता है। किसी श्रेष्ठ व्यक्ति का अनादर या अपमान करते हैं अथवा अन्य कोई घोर पातक करते हैं तो पुण्य क्षीण हो जाते हैं। तब आपका वह पाप आपकी मति को पलटकर उससे दुःखद निर्णय करवा देता है। पाप के संस्कार बुरी आदतों एवं व्यर्थ वासनाओं को पोषित करते हैं कि 'सेवानिवृत्त हो गये हैं, फिर भी नौकरी बनी रहे।' सेवानिवृत्त हो जाने पर भी अधिकार की लोलुपता और वासना मजूरी करवाती है। आयुष्य भले नष्ट हो जाय लेकिन चस्का लेने की वासना बनी रहती है, इसलिए लोग सेवानिवृत्त हो जाने पर भी कुछ-न-कुछ करने के लिए

की रक्षा से परम कल्याण

खोजते रहते हैं। कुछ लोग कहते हैं : 'पैसों की तो जरूरत नहीं है लेकिन 'टाइम पास' करना है।' हाय रे पाप ! समय इतना कीमती है कि आप सब कुछ देकर भी अपना खोया हुआ समय वापस नहीं ला सकते। ऐसा मूल्यवान समय पसार करने के लिए कुछ-न-कुछ काम करना है, कोई काम खोज रहे हैं !

राजे-महाराजे राजपाट छोड़कर गुरु की खोज में लगते, ईश्वरप्राप्ति में लगते थे और हमें गुरु मिले हैं और सेवानिवृत्त भी हुए हैं, फिर भी कोई नौकरी-धंधा करेंगे। हाय रे पाप ! अभी तक खोपड़ी में बैठे हैं ये अभागे ! कहाँ गयी आपकी मति-गति, कहाँ गया विवेक, कहाँ गया वैराग्य, कहाँ गया आत्मसाक्षात्कार करने का मानवीय जीवन का जन्मसिद्ध अधिकार ? जिस ईश्वरप्राप्ति के लिए यह शरीर मिला है, वही कठिन लग रही है तो सरल क्या है ? पापों ने दबा दिया सारी शुभ इच्छाओं को...

सद्भाव नहीं टिकता यह पाप का संस्कार है। ध्यान में जो शांति मिलती है उसे बनाये रखने का यत्न नहीं करते यह भी पाप का संस्कार है।

सारे शुभ कर्मों का फल यह है कि आपका विवेक जगे, वैराग्य जगे, भगवत्सुख व भगवत्शांति बढ़े। यदि यह नहीं हो रहा है तो आपके मन में अभी पाप के संस्कार बाकी हैं। पुण्य पुण्य को बढ़ाते हैं, पाप पाप को बढ़ाते हैं।

पाप के संस्कार मिटाने के उपाय हैं - भगवज्जनों का संग, भगवान की प्रार्थना, भगवान का सान्निध्य मिले ऐसा सत्संग। ये ही आपके सिर पर लदे पाप के बोझ को हटायेंगे। तब आपका पुण्य-प्रभाव, विवेक और वैराग्य जगेगा।

सद्भाव, वैराग्यभाव और शांतभाव इन तीन भावों को खूब पुष्ट करो। आप इनकी रक्षा करोगे तो ये आपकी रक्षा करके आपको संत तुकारामजी जैसा महापुरुष बना देंगे। आपका नाम भले तुकाराम नहीं होगा, परंतु जिस ऊँचाई पर वे पहुँच गये वहाँ पर आप भी पहुँच जाओगे। जहाँ मेरे लीलाशाहजी भगवान पहुँच गये, वहाँ आप भी पहुँच जाओगे। जिस परम पद में ज्ञानेश्वर महाराज, कबीरजी, गुरु नानकजी विराजे उसमें आप भी विराजोगे...
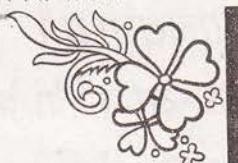
मधुर वाणी की महिमा

यह समझ लो कि मीठी और हितभरी वाणी दूसरे को आनंद, शांति एवं प्रेम का दान करती है और बोलनेवाले के लिए भी आनंद, शांति एवं प्रेम खींच लाती है। मीठी एवं हितभरी वाणी से सद्गुणों का पोषण होता है, मन को पवित्र शक्ति प्राप्त होती है तथा बुद्धि निर्मल बनती है। इससे अपना, दूसरों का - सबका कल्याण होता है। ऐसी वाणी से सत्य की रक्षा होती है एवं उसमें ही सत्य की शोभा है।

सरस्वतिर्वसति जिह्वाग्रे जिह्वाग्रे बान्धवाः।
जिह्वाग्रे बन्धनं प्राप्तं जिह्वाग्रे मरणं ध्रुवम्॥

मधुर बोलनेवाले की जिह्वा पर देवी सरस्वती का निवास रहता है। जिह्वा द्वारा मधुर वचन बोलने से मित्र एवं आर्तजन खिंचे चले आते हैं। कटु बोलने से परस्पर गुत्थियाँ बढ़ती हैं एवं कभी-कभी तो कटु वाणी मृत्यु का कारण भी बन जाती है। अतः मुख से ऐसा शब्द कभी न उच्चारित करें, जिससे किसीका दिल दुःखे या अहित हो जाय।

महामना मदनमोहन मालवीयजी से किसीने कहा : "आप मुझे १०० गालियाँ देकर देखें, मुझे गुस्सा नहीं आयेगा।"

इस पर महामना ने जो उत्तर दिया, वह उनकी महानता को प्रकट करता है। वे बोले :

"आपके क्रोध की परीक्षा तो बाद में होगी, परंतु मेरा मुँह तो पहले ही गालियों से गंदा हो जायेगा।"

कड़वी वाणी का प्रयोग इतना भयंकर है कि मनुष्य के हृदय को बेध डालता है। अतः ऐसी वाणी का प्रयोग नहीं करना चाहिए। वाणी में मधुरता, प्रियता एवं सभ्यता का विवेकपूर्ण समन्वय जीवन में दक्षता लाता है। गोस्वामी तुलसीदासजी के ये वचन सदैव याद रखने योग्य हैं :

तुलसी मीठे वचन ते सुख उपजत चहुँ ओर।
वशीकरण यह मंत्र है तज दे वचन कठोर॥
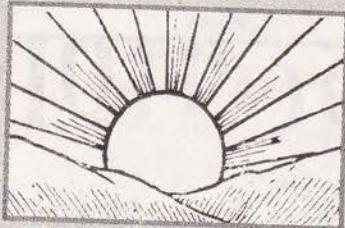
भारतवासियो ! अब जागो...

भारत को अपने लक्ष्य तक पहुँचना है और वह लक्ष्य है अपनी आध्यात्मिक संस्कृति का पुनरुद्धार । इसमें न केवल भारत का अपितु संपूर्ण मानवता का कल्याण निहित है । यह तभी संभव है जब भारत के बुद्धिजीवी आधुनिकता का मोह त्यागकर अपने धर्म और अध्यात्म की कटु आलोचना से विरत हों ।

'अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑफ वैदिक स्टडीज' के निदेशक मि. डेविड फ्राली अपनी पुस्तक 'अराइज अर्जुन' (हिन्दी अनुवाद 'उत्तिष्ठ कौन्तेय') में भारतवासियों को जागृत करते हुए कहते हैं :

* हे भारतवासियो ! आपकी आध्यात्मिक संपदा मानव की सबसे मूल्यवान निधि है । आप कृपया इसका पोषण कीजिये, रक्षा कीजिये, अभ्यास कीजिये और सबके साथ मिलकर इस ज्ञान का उपयोग कीजिये । वेद सूर्य के समान हैं । इनमें संपूर्ण विश्व के लिए प्रकाश, प्यार और जीवन सन्निहित है तथा इनके माध्यम से ही व्यष्टि अथवा समष्टि के संकटों का निवारण संभव है । आप अपनी वैदिक धरोहर को भूलिये नहीं और जिन्हें वेदों का कुछ भी ज्ञान है उन्हें चाहिए कि वे वेदों का अधिक-से-अधिक अध्ययन करें और इनका संरक्षण करें । (पृष्ठक्र.१९०)

* ईसाई धर्म-प्रचारकों ने भारत में अपने धर्म-प्रचार के लिए कितने हिन्दू परिवारों में मतभेद पैदा किये हैं, उनकी पारिवारिक सुख-शांति भंग की है, इसकी कोई गणना नहीं । उन्होंने हिन्दू समाज को तोड़ने का काम किया है तथा जिन लोगों का धर्म-परिवर्तन किया उनकी मूल पहचान ही नष्ट कर दी है । ऐसा किसी भी हिन्दू धर्म-प्रचारक ने पश्चिम के देशों में नहीं किया । (पृ. २२)

* अध्यात्म का यदि कोई सर्वश्रेष्ठ विज्ञान है तो वह है वेदांत । वेदांत हमें अंतिम चिरंतन सत्य तक ले जाने में सक्षम है । आत्मा की जिज्ञासा तक ले जानेवाला ही वास्तव में धर्म है और वह हमें आत्मज्ञान के मार्ग पर छोड़ देता है । यदि कोई धर्म यह कार्य नहीं कर सकता तो उसकी कोई उपयोगिता नहीं, उसमें कहीं कुछ कमी अवश्य है । जो धर्म उच्चतम सत्य को स्वीकार नहीं करता यानी आत्मसाक्षात्कार के लक्ष्य को स्वीकार नहीं करता, वह हमें वहाँ तक पहुँचा ही नहीं सकता, अपितु हमें आधे रास्ते में ही भटकने के लिए छोड़ देगा अथवा हमें उससे बाहर होकर आधे रास्ते में उसे छोड़ना पड़ेगा । जिस धर्म से आत्मज्ञान प्राप्त न हो अथवा आत्मज्ञान की प्राप्ति जिस धर्म का लक्ष्य न हो, क्या वह धर्म है ? (पृ. ६१-६२)

* यदि लोग वास्तव में धर्मों की एकता के प्रति निष्ठावान हों तो कुछ धर्मों में चल रही धर्म-परिवर्तन

की कारगुजारी पर अविलम्ब प्रतिबंध लगना आवश्यक है। (पृ. ७४)

* भारतीय दर्शन में मैंने पाया कि वह अपने 'स्व' को समझने के विज्ञान में पूर्ण सक्षम है तथा इसके द्वारा इस विशाल ब्रह्मांड का भी अध्ययन संभव है । यह आध्यात्मिक ज्ञान एवं समझ पाश्चात्य दर्शन एवं अध्यात्म में नहीं है । श्री रमण महर्षि, श्री रामकृष्ण परमहंस आदि भारतीय योगियों और आध्यात्मिक गुरुओं की तुलना में पश्चिमी संस्कृति के महान चिंतक आइन्स्टाईन तथा फ्रायड आदि बच्चे-से लगते हैं। यहाँ तक कि ईसाई धर्म के प्रमुख पोप भी चेतना की उच्च अवस्था के बारे में अनभिज्ञ हैं। (पृ. ११)

* स्वतंत्रता के बाद एक ओर हिन्दू-विरोधी प्रचार तथा दूसरी ओर साम्यवाद, इस्लाम व ईसाई धर्म के प्रचार द्वारा भारत को टुकड़े-टुकड़े करने की साजिश ने इस देश की समस्या को काफी बढ़ाया है । तथाकथित उदार धर्म-निरपेक्ष वे हैं जो भ्रष्ट राजनीतिज्ञ हैं और वे अपनी कुर्सी तथा सत्ता के लालच में अपना वोट बैंक बढ़ाने के लिए भारतीय हिन्दू समाज को जातिवाद एवं धर्म के नाम पर बहकाते हैं तथा आपस में द्वेष फैलाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। (पृ. १३)

* भारत को अपने लक्ष्य तक पहुँचना है और वह लक्ष्य है अपनी आध्यात्मिक संस्कृति का पुनरुद्धार। इसमें न केवल भारत का अपितु संपूर्ण मानवता का कल्याण निहित है। यह तभी संभव है जब भारत के बुद्धिजीवी आधुनिकता का मोह त्यागकर अपने धर्म और अध्यात्म की कटु आलोचना से विरत हों। (पृ. १४)

* भारत एक ओर पश्चिम से आयात किये गये धर्म-निरपेक्षवाद के चंगुल में फँसा है और दूसरी ओर पश्चिम के धर्मों द्वारा परिवर्तन के दबाव में। इन धर्मावलम्बियों के पास काफी बड़ी मात्रा में आर्थिक साधन हैं, जिनके बल पर वे धर्मांतरण करने में सफल हो रहे हैं। उनका एकमात्र उद्देश्य भारत देश को खंड-खंड करना है। आज तक भारत इनके प्रभाव को रोकने के बजाय तुष्टि करने के रास्ते पर चल रहा है। (पृ. ४)

* विश्व में कौन-सा ऐसा देश है जो हिन्दुओं की सुरक्षा एवं सम्मान के प्रति चिंतित एवं सचेष्ट है ? भारत के अनेक हिस्सों में इस्लामी तथा ईसाई मिशनरियों का जाल बिछा हुआ है और भारत के जिन-जिन हिस्सों में इनका बहुमत हुआ है वहाँ-वहाँ इन्होंने अलगाववाद की भावना भड़कायी है। वे हिस्से अपने को भारत का अंग मानने से इनकार करते हैं। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है। जहाँ-जहाँ हिन्दू घटा, देश बँटा। (पृ. ३२)

* हिन्दू सर्वधर्म-समभाव के जोश में भले ही ('सभी धर्म समान हैं') इस प्रकार की घोषणा करता फिरे लेकिन गैर-हिन्दू इन घोषणाओं को भावुकता की बहक अथवा भ्रांत चिंतन ही मानते हैं तथा अपने धर्म को मूर्ति एवं गुरुपूजक हिन्दू धर्म के समकक्ष कभी स्वीकार नहीं करते। (पृ. १००)

* जब हम यह कहते हैं कि सभी धर्म एक ही हैं तब हमारा तात्पर्य क्या है ? क्या हम सत्य की तह तक गये हैं ? या यों ही एकता की घोषणा कर रहे हैं ? यह पूरे विश्व में या एक देश में परस्पर लड़ रहे धार्मिक समुदायों में शांति स्थापित करने की राजनीतिक कूटनीति तो नहीं है ? अथवा किसी नये धार्मिक समुदाय द्वारा दूसरे धर्म के भोले-भाले लोगों को इन लुभावने नारों के इन्द्रजाल में फँसाकर उनके धर्मांतरण का कुप्रयास तो नहीं है ? यदि ऐसा है तो यह घोषणा उस सत्य की उपज नहीं है जो हम सबको वास्तव में जोड़ सकता है। (पृ. ७२)

विभिन्न रोगनाशक मंत्र

बाल्यकाल में कफजनित, युवाकाल में पित्तजनित और बुढ़ापे में वायुजनित तकलीफें, पक्षाघात, जोड़ों का दर्द, रात्रि १ से २ बजे के बीच नींद खुल जाना, डकारें आना - इस प्रकार के कई रोगों को मिटाने हेतु निम्न मंत्र बहुत उपयोगी है :

नासै रोग हरै सब पीरा । जपत निरंतर हनुमत बीरा ॥ *(श्री हनुमान चालीसा)*

श्वास को एक मिनट भीतर व फिर ४० सेकंड बाहर रोककर इस मंत्र का जप करने से और अधिक फायदा होगा। ऐसा दस बार करें। एक बार श्वास अंदर व बाहर रोकने को एक गिनें। दिन में अन्य समय भी इस मंत्र की आवृत्ति करते रहें।

इस मंत्र का जप पद्मासन में बैठकर करें तो अच्छा है, अन्यथा किसी भी आसन में बैठकर कर सकते हैं।

महान भगवद्भक्त

'श्रीमद्भागवत महापुराण' से

(पिछले अंक में आपने पढ़ा कि प्रह्लादजी के मुख से भगवद्भक्ति और भगवत्समर्पण की बात सुनकर क्रोधित हुए हिरण्यकशिपु ने प्रह्लादजी को शिक्षा देनेवाले एक गुरुपुत्र को फटकारा । परंतु गुरुपुत्र ने प्रह्लादजी की भगवन्निष्ठा को उनकी जन्मजात स्वाभाविक बुद्धि बताया । तब हिरण्यकशिपु ने प्रह्लादजी से पूछा कि ऐसी खोटी बुद्धि उन्हें गुरुमुख से नहीं मिली तो फिर कहाँ से प्राप्त हुई ? इस पर प्रह्लादजी ने बड़े ही मार्मिक वचन कहे :)

प्रह्लादजी ने कहा : ''पिताजी ! संसार के लोग तो पिसे हुए को पीस रहे हैं, चबाये हुए को चबा रहे हैं। उनकी इन्द्रियाँ वश में न होने के कारण वे भोगे हुए विषयों को ही फिर-फिर से भोगने के लिए संसाररूप घोर नरक की ओर जा रहे हैं । ऐसे गृहासक्त पुरुषों की बुद्धि अपने-आप, किसीके सिखाने से अथवा अपने ही जैसे लोगों के संग से भगवान श्रीकृष्ण में नहीं लगती। जो इन्द्रियों से दिखनेवाले बाह्य विषयों को परम इष्ट समझकर मूर्खतावश अंधों के पीछे अंधों की तरह गड्ढे में गिरने के लिए चले जा रहे हैं और वेदवाणीरूप रस्सी के काम्यकर्मों के दीर्घ बंधन में बँधे हुए हैं, उनको यह बात मालूम नहीं कि हमारे स्वार्थ और परमार्थ भगवान विष्णु ही हैं, उन्हींकी प्राप्ति से हमें सब पुरुषार्थों की प्राप्ति हो सकती है। जिनकी बुद्धि भगवान के चरणकमलों का स्पर्श कर लेती है, उनके जन्म-मृत्युरूप अनर्थ का सर्वथा नाश हो जाता है। परंतु जो लोग अकिंचन भगवत्प्रेमी महात्माओं के चरणों की धूल में स्नान नहीं कर लेते, उनकी बुद्धि काम्यकर्मों का पूरा सेवन करने पर भी भगवच्चरणों का स्पर्श नहीं कर सकती।''

नारदजी ने कहा : युधिष्ठिर ! प्रह्लादजी इतना कहकर चुप हो गये। हिरण्यकशिपु ने क्रोध के मारे अंधा होकर उन्हें अपनी गोद से उठाकर भूमि पर पटक दिया। प्रह्लादजी की बात को वह सह न सका। रोष के मारे उसके नेत्र लाल हो गये। वह कहने लगा :

''दैत्यो ! इसे यहाँ से बाहर ले जाओ और तुरंत मार डालो । यह मार ही डालने योग्य है । देखो तो सही, अपने सुहृद-स्वजनों को छोड़कर यह नीच दास के समान उसी विष्णु के चरणों की पूजा करता है, जिसने इसके चाचा को मार डाला। हो-न-हो, इसके रूप में मेरे भाई को मारनेवाला विष्णु ही आ गया है। अब यह विश्वास के योग्य नहीं है। पाँच वर्ष की अवस्था में ही जिसने अपने माता-पिता के दुस्त्यज वात्सल्य-स्नेह को भुला दिया, वह कृतघ्न भला विष्णु का ही क्या हित करेगा ? कोई दूसरा भी यदि औषध के समान भलाई करे तो वह एक प्रकार से पुत्र ही है। पर यदि अपना पुत्र भी अहित करने लगे तो रोग के समान वह शत्रु है । अपने शरीर के ही किसी अंग से सारे शरीर को हानि होती हो तो उसको काट डालना चाहिए, क्योंकि उसे काट देने से शेष

शरीर सुख से जी सकता है। यह स्वजन का बाना पहनकर मेरा कोई शत्रु ही आया है। जैसे योगी की भोगलोलुप इन्द्रियाँ उसका अनिष्ट करती हैं, वैसे ही यह मेरा अहित करनेवाला है। इसलिए खाने, सोने, बैठने आदि के समय किसी भी उपाय से इसे मार डालो।''

जब हिरण्यकशिपु ने दैत्यों को इस प्रकार आज्ञा दी, तब तीखी दाढ़, विकराल मुख, लाल-लाल दाढ़ी-मूँछ एवं केशोंवाले दैत्य हाथों में त्रिशूल ले-लेकर 'मारो-काटो'- इस प्रकार बड़े जोर-से चिल्लाने लगे। प्रह्लाद चुपचाप बैठे हुए थे और दैत्य उनके सभी मर्मस्थानों में शूल से घाव कर रहे थे।

उस समय प्रह्लादजी का चित्त उन परमात्मा में लगा हुआ था, जो मन-वाणी से अगोचर, सर्वात्मा, समस्त शक्तियों के आधार एवं परब्रह्म हैं। इसलिए उनके सारे प्रहार ठीक वैसे ही निष्फल हो गये, जैसे भाग्यहीनों के बड़े-बड़े उद्योग-धंधे व्यर्थ होते हैं। युधिष्ठिर! जब शूलों की मार से प्रह्लाद के शरीर पर कोई असर नहीं हुआ, तब हिरण्यकशिपु को बड़ी शंका हुई। अब वह प्रह्लाद को मार डालने के लिए बड़े हठ से भाँति-भाँति के उपाय करने लगा। उसने उन्हें बड़े-बड़े मतवाले हाथियों से कुचलवाया, विषधर साँपों से डँसवाया, पुरोहितों से कृत्या राक्षसी उत्पन्न करायी, पहाड़ की चोटी से नीचे डलवा दिया, शंबरासुर से अनेकों प्रकार की माया का प्रयोग करवाया, अँधेरी कोठरियों में बंद करा दिया, विष पिलाया और खाना बंद कर दिया। बर्फीली जगह, दहकती हुई आग और समुद्र में बारी-बारी से डलवाया, आँधी में छोड़ दिया तथा पर्वतों के नीचे दबवा दिया, परंतु इनमें से किसी भी उपाय से वह अपने निष्पाप पुत्र प्रह्लाद का बाल भी बाँका न कर सका। अपनी विवशता देखकर हिरण्यकशिपु को बड़ी चिंता हुई। उसे प्रह्लाद को मारने के लिए और कोई उपाय नहीं सूझ पड़ा।

वह सोचने लगा : 'इसे मैंने बहुत कुछ बुरा-भला कहा, मार डालने के बहुत-से उपाय किये। परंतु यह मेरे द्रोह और दुर्व्यवहारों से बिना किसीकी सहायता से अपने प्रभाव से ही बचता गया। यह बालक होने पर भी समझदार है और मेरे पास ही निःशंक भाव से रहता है। हो-न-हो इसमें कुछ सामर्थ्य अवश्य है। जैसे शुनःशेप (शुनःशेप अजीगर्त का मँझला पुत्र था। उसके पिता ने वरुण के यज्ञ में बलि देने के लिए उसे हरिश्चंद्र के पुत्र रोहिताश्व के हाथ बेच दिया था। तब उसके मामा विश्वामित्रजी ने उसकी रक्षा की और वह अपने पिता के विरुद्ध होकर उनके विपक्षी विश्वामित्रजी के ही गोत्र में हो गया। यह कथा 'श्रीमद्भागवत' के नवम स्कंध के सातवें अध्याय में आती है।) अपने पिता की करतूतों से उसका विरोधी हो गया था, वैसे ही यह भी मेरे किये अपकारों को न भूलेगा। न तो यह किसीसे डरता है और न इसकी मृत्यु ही होती है। इसकी शक्ति की थाह नहीं है। अवश्य ही इसके विरोध से मेरी मृत्यु होगी। संभव है, न भी हो।'

इस प्रकार सोच-विचार करते-करते उसका चेहरा कुछ उतर गया। शुक्राचार्यजी के पुत्र शंड और अमर्क ने जब देखा कि हिरण्यकशिपु तो मुँह लटकाकर बैठा हुआ है, तब उन्होंने एकांत में जाकर उससे यह बात कही : ''स्वामी! आपने अकेले ही तीनों लोकों पर विजय प्राप्त कर ली। आपके भौंहें टेढ़ी करने पर ही सारे लोकपाल काँप उठते हैं। हमारे देखने में तो आपके लिए चिंता की कोई बात नहीं है। भला, बच्चों के खिलवाड़ में भी भलाई-बुराई सोचने की कोई बात है! जब तक हमारे पिता शुक्राचार्यजी नहीं आ जाते, तब तक यह डरकर कहीं भाग न जाय इसलिए इसे वरुण के पाशों से बाँध रखिये। प्रायः ऐसा होता है कि अवस्था की वृद्धि के साथ-साथ और गुरुजनों की सेवा से बुद्धि सुधर जाया करती है।''

हिरण्यकशिपु ने ''अच्छा, ठीक है।'' कहकर गुरुपुत्रों की सलाह मान ली और कहा कि ''इसे उन धर्मों का उपदेश देना चाहिए, जिनका पालन गृहस्थ नरपति किया करते हैं।'' युधिष्ठिर! इसके बाद पुरोहित प्रह्लादजी को लेकर पाठशाला में गये और क्रमशः धर्म, अर्थ व काम - इन तीन पुरुषार्थों की शिक्षा देने लगे। प्रह्लाद वहाँ अत्यंत नम्र सेवक की भाँति रहते थे। परंतु गुरुओं की वह शिक्षा प्रह्लाद को अच्छी न लगी। क्योंकि गुरुजी उन्हें केवल अर्थ, धर्म और काम की ही शिक्षा देते थे। यह शिक्षा केवल उन लोगों के लिए है, जो राग-द्वेष आदि द्वन्द्व और विषय-भोगों में रस ले रहे हों। एक दिन गुरुजी गृहस्थी के काम से कहीं बाहर चले गये थे। छुट्टी मिल जाने के कारण समवयस्क बालकों ने प्रह्लादजी को खेलने के लिए पुकारा। प्रह्लादजी परम ज्ञानी थे, बालकों का प्रेम देखकर उन्होंने उनको ही बड़ी मधुर वाणी से पुकारकर अपने पास बुला लिया। उनसे उनके जन्म-मरण की गति भी छिपी नहीं थी। वे उन पर कृपा करके हँसते हुए-से उन्हें उपदेश देने लगे।

युधिष्ठिर! वे सब अभी बालक ही थे, इसलिए राग-द्वेषपरायण विषयभोगी पुरुषों के उपदेशों से और चेष्टाओं से उनकी बुद्धि अभी दूषित नहीं हुई थी। इसीसे और प्रह्लादजी के प्रति आदरबुद्धि होने से उन सबने अपने खेलकूद की सामग्रियों को छोड़ दिया तथा प्रह्लादजी के पास जाकर उनके चारों ओर बैठ गये और उनके उपदेश में मन लगाकर बड़े प्रेम से एकटक उनकी ओर देखने लगे। भगवान के परम प्रेमी

भक्त प्रह्लाद का हृदय उनके प्रति करुणा और मैत्री के भाव से भर गया।

प्रह्लादजी ने उनसे कहा : ''मित्रो ! इस संसार में मनुष्य-जन्म बड़ा दुर्लभ है । इसके द्वारा अविनाशी परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है । परंतु पता नहीं कब इसका अंत हो जाय, इसलिए बुद्धिमान पुरुष को बुढ़ापे या जवानी के भरोसे न रहकर बचपन में ही भगवान की प्राप्ति करानेवाले साधनों का अनुष्ठान कर लेना चाहिए। इस मनुष्य-जन्म में श्रीभगवान के चरणों की शरण लेना ही जीवन की एकमात्र सफलता है । क्योंकि भगवान समस्त प्राणियों के स्वामी, सुहृद, प्रियतम और आत्मा हैं । भाइयो ! इन्द्रियों से जो सुख भोगा जाता है वह तो जीव चाहे जिस योनि में रहे, प्रारब्ध के अनुसार सर्वत्र वैसे ही मिलता रहता है, जैसे बिना किसी प्रकार का प्रयत्न किये, निवारण करने पर भी दुःख मिलता है । इसलिए सांसारिक सुख के उद्देश्य से प्रयत्न करने की कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि स्वयं मिलनेवाली वस्तु के लिए परिश्रम करना आयु और शक्ति को व्यर्थ गँवाना है । जो इनमें उलझ जाते हैं, उन्हें भगवान के परम कल्याणस्वरूप चरणकमलों की प्राप्ति नहीं होती । हमारे सिर पर अनेकों प्रकार के भय सवार रहते हैं । इसलिए यह शरीर जो भगवत्प्राप्ति के लिए पर्याप्त है जब तक रोग-शोकादि से ग्रस्त होकर मृत्यु के मुख में नहीं चला जाता, तभी तक बुद्धिमान पुरुष को अपने कल्याण के लिए प्रयत्न कर लेना चाहिए। मनुष्य की पूरी आयु सौ वर्ष की है। जिन्होंने अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं किया है, उनकी आयु का आधा हिस्सा तो यों ही बीत जाता है। क्योंकि वे रात में घोर तमोगुण-अज्ञान से ग्रस्त होकर सोते रहते हैं। बचपन में उन्हें अपने हित-अहित का ज्ञान नहीं रहता, कुछ बड़े होने पर कुमार-अवस्था में वे खेलकूद में लग जाते हैं। इस प्रकार बीस वर्षों का तो पता ही नहीं चलता। जब बुढ़ापा शरीर को ग्रस लेता है, तब अंत के बीस वर्षों में कुछ करने-धरने की शक्ति ही नहीं रह जाती । रह गयी बीच की कुछ थोड़ी-सी आयु, उसमें कभी न पूरी होनेवाली बड़ी-बड़ी कामनाएँ हैं, बलात् पकड़ रखनेवाला मोह है और घर-द्वार की वह आसक्ति है जिससे जीव इतना उलझ जाता है कि उसे कुछ कर्तव्य-अकर्तव्य का ज्ञान ही नहीं रहता । इस प्रकार बची-खुची आयु भी हाथ से निकल जाती है।

''जो लोग अकिंचन भगवत्प्रेमी महात्माओं के चरणों की धूल में स्नान नहीं कर लेते, उनकी बुद्धि काम्यकर्मों का पूरा सेवन करने पर भी भगवच्चरणों का स्पर्श नहीं कर सकती।''

दैत्यबालको ! जिसकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं, ऐसा कौन-सा पुरुष होगा, जो घर-गृहस्थी में आसक्त और माया-ममता की मजबूत फाँसी में फँसे हुए अपने-आपको उससे छुड़ाने का साहस कर सके ? जिसे चोर, सेवक एवं व्यापारी अपने अत्यंत प्यारे प्राणों की भी बाजी लगाकर संग्रह करते हैं और इसलिए उन्हें जो प्राणों से भी अधिक वांछनीय है, उस धन की तृष्णा को भला, कौन त्याग सकता है ? जो अपनी प्रियतमा पत्नी के एकांत सहवास, उसकी प्रेमभरी बातों और मीठी-मीठी सलाह पर अपने को न्योछावर कर चुका है, भाई-बंधु और मित्रों के स्नेह-पाश में बँध चुका है और नन्हे-नन्हे शिशुओं की तोतली बोली पर स्वयं को लुभा चुका है - भला, वह उन्हें कैसे छोड़ सकता है ? जो अपनी ससुराल गयी हुई प्रिय पुत्रियों, पुत्रों, भाई-बहनों और दीन अवस्था को प्राप्त पिता-माता, बहुत-सी सुंदर-सुंदर बहुमूल्य सामग्रियों से सजे हुए घरों, कुल-परंपरागत जीविका के साधनों तथा पशुओं और सेवकों के निरंतर स्मरण में रम गया है, वह भला, उन्हें कैसे छोड़ सकता है ? जो जननेन्द्रिय और रसनेन्द्रिय के सुखों को ही सर्वस्व मान बैठा है, जिसकी भोगवासनाएँ कभी तृप्त नहीं होतीं, जो लोभवश कर्म पर कर्म करता हुआ रेशम के कीड़े की तरह अपने को और भी कड़े बंधन में जकड़ता जा रहा है और जिसके मोह की कोई सीमा नहीं है, वह उनसे किस प्रकार विरक्त हो सकता है और कैसे उनका त्याग कर सकता है ? यह मेरा कुटुंब है, इस भाव से उसमें वह इतना रम जाता है कि उसीके पालन-पोषण के लिए अपनी अमूल्य आयु को गँवा देता है और उसे यह भी नहीं जान पड़ता कि मेरे जीवन का वास्तविक उद्देश्य नष्ट हो रहा है। भला, इस प्रमाद की भी कोई सीमा है ? यदि इन कामों में कुछ सुख मिले तो भी एक बात है, परंतु यहाँ तो जहाँ-जहाँ वह जाता है, वहीं-वहीं दैहिक, दैविक और भौतिक ताप उसके हृदय को जलाते ही रहते हैं। फिर भी वैराग्य का उदय नहीं होता। कितनी विडंबना है ! कुटुंब की ममता के फेर में पड़कर वह इतना असावधान हो जाता है, उसका मन धन के चिंतन में सदा इतना लवलीन रहता है कि वह दूसरे का धन चुराने के लौकिक-पारलौकिक दोषों को जानता हुआ भी कामनाओं को वश में न कर सकने के कारण, इन्द्रियों के भोग की

"मित्रो ! बुद्धिमान पुरुष को बुढ़ापे या जवानी के भरोसे न रहकर बचपन में ही भगवान की प्राप्ति करानेवाले साधनों का अनुष्ठान कर लेना चाहिए। इस मनुष्य-जन्म में श्रीभगवान के चरणों की शरण लेना ही जीवन की एकमात्र सफलता है।"

लालसा से चोरी कर ही बैठता है। भाइयो ! जो इस प्रकार अपने कुटुंबियों का पेट पालने में ही लगा रहता है, कभी भगवद्भजन नहीं करता, वह विद्वान हो तो भी उसे परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती। क्योंकि अपने-पराये का भेदभाव रहने के कारण उसे भी अज्ञानियों के समान ही तमःप्रधान गति प्राप्त होती है। जो कामिनियों के मनोरंजन का साधन - उनका क्रीड़ामृग बन रहा है और जिसने अपने पैरों में संतान की बेड़ी जकड़ ली है, वह बेचारा गरीब, चाहे कोई भी हो, कहीं भी हो - किसी भी प्रकार से अपना उद्धार नहीं कर सकता। इसलिए भाइयो ! तुम लोग विषयासक्त दैत्यों का संग दूर से ही छोड़ दो और आदिदेव भगवान नारायण की शरण ग्रहण करो। क्योंकि जिन्होंने संसार की आसक्ति छोड़ दी है, उन महात्माओं के वे ही परम प्रियतम और परम गति हैं।

मित्रो ! भगवान को प्रसन्न करने के लिए कोई बहुत परिश्रम या प्रयत्न नहीं करना पड़ता। क्योंकि वे समस्त प्राणियों के आत्मा हैं और सर्वत्र सबकी सत्ता के रूप में स्वयंसिद्ध वस्तु हैं। ब्रह्माजी से लेकर तिनके तक छोटे-बड़े समस्त प्राणियों में, पंचभूतों से बनी हुई वस्तुओं में, पंचभूतों में, सूक्ष्म तन्मात्राओं में, महत्तत्त्व में, तीनों गुणों में और गुणों की साम्यावस्था प्रकृति में एक ही अविनाशी परमात्मा विराजमान हैं। वे ही समस्त सौंदर्य, माधुर्य और ऐश्वर्यों की खान हैं। वे ही अंतर्यामी द्रष्टा के रूप में हैं और वे ही दृश्य जगत के रूप में भी हैं। सर्वथा अनिर्वचनीय तथा विकल्परहित होने पर भी द्रष्टा और दृश्य, व्याप्य और व्यापक के रूप में उनका निर्वचन किया जाता है। वस्तुतः, उनमें एक भी विकल्प नहीं है। वे केवल अनुभवस्वरूप, आनंदस्वरूप एकमात्र परमेश्वर ही हैं। गुणमयी सृष्टि करनेवाली माया के द्वारा ही उनका ऐश्वर्य छिप रहा है। इसके निवृत्त होते ही उनके दर्शन हो जाते हैं।

इसलिए तुम लोग अपने दैत्यपने का, आसुरी संपत्ति का त्याग करके समस्त प्राणियों पर दया करो, प्रेम से उनकी भलाई करो। इसीसे भगवान प्रसन्न होते हैं। आदिनारायण अनंत भगवान के प्रसन्न हो जाने पर ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो नहीं मिल जाती ? लोक और परलोक के लिए जिन धर्म, अर्थ आदि की आवश्यकता बतलायी जाती है, वे तो गुणों के परिणाम से बिना प्रयास के स्वयं ही मिलनेवाले हैं। जब हम श्रीभगवान के चरणामृत का सेवन करने और उनके नाम-गुणों का कीर्तन करने में लगे हैं, तब हमें मोक्ष की भी क्या आवश्यकता है ? यों शास्त्रों में धर्म, अर्थ और काम - इन तीनों पुरुषार्थों का भी वर्णन है। आत्मविद्या, कर्मकांड, न्याय (तर्कशास्त्र), दंडनीति और जीविका के विविध साधन - ये सभी वेदों में निरूपित विषय हैं, परंतु यदि ये अपने परम हितैषी, परम पुरुष भगवान श्रीहरि को आत्मसमर्पण करने में सहायक हैं, तभी मैं इन्हें सत्य (सार्थक) मानता हूँ। अन्यथा ये सब-के-सब निरर्थक हैं। यह निर्मल ज्ञान, जो मैंने तुम लोगों को बतलाया है, बड़ा ही दुर्लभ है। इसे पहले नर-नारायण ने नारदजी को दिया था और यह ज्ञान उन सब लोगों को प्राप्त हो सकता है, जिन्होंने भगवान के अनन्य प्रेमी एवं अकिंचन भक्तों के चरणकमलों की धूलि से अपने शरीर को नहला लिया है। यह विज्ञानसहित ज्ञान विशुद्ध भागवतधर्म है। इसे मैंने भगवान के दर्शन करानेवाले देवर्षि नारदजी के श्रीमुख से ही पहले-पहल सुना था।"

(क्रमशः)

देवर्षि नारदजी का सत्संग सुनते हुए गर्भिणी कयाधू

"मित्रो ! बुद्धिमान पुरुष को बुढ़ापे या जवानी के भरोसे न रहकर बचपन में ही भगवान की प्राप्ति करानेवाले साधनों का अनुष्ठान कर लेना चाहिए। इस मनुष्य-जन्म में श्रीभगवान के चरणों की शरण लेना ही जीवन की एकमात्र सफलता है।"

लालसा से चोरी कर ही बैठता है। भाइयो ! जो इस प्रकार अपने कुटुंबियों का पेट पालने में ही लगा रहता है, कभी भगवद्भजन नहीं करता, वह विद्वान हो तो भी उसे परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती। क्योंकि अपने-पराये का भेदभाव रहने के कारण उसे भी अज्ञानियों के समान ही तमःप्रधान गति प्राप्त होती है। जो कामिनियों के मनोरंजन का साधन - उनका क्रीड़ामृग बन रहा है और जिसने अपने पैरों में संतान की बेड़ी जकड़ ली है, वह बेचारा गरीब, चाहे कोई भी हो, कहीं भी हो - किसी भी प्रकार से अपना उद्धार नहीं कर सकता। इसलिए भाइयो ! तुम लोग विषयासक्त दैत्यों का संग दूर से ही छोड़ दो और आदिदेव भगवान नारायण की शरण ग्रहण करो। क्योंकि जिन्होंने संसार की आसक्ति छोड़ दी है, उन महात्माओं के वे ही परम प्रियतम और परम गति हैं।

मित्रो ! भगवान को प्रसन्न करने के लिए कोई बहुत परिश्रम या प्रयत्न नहीं करना पड़ता। क्योंकि वे समस्त प्राणियों के आत्मा हैं और सर्वत्र सबकी सत्ता के रूप में स्वयंसिद्ध वस्तु हैं। ब्रह्माजी से लेकर तिनके तक छोटे-बड़े समस्त प्राणियों में, पंचभूतों से बनी हुई वस्तुओं में, पंचभूतों में, सूक्ष्म तन्मात्राओं में, महत्तत्त्व में, तीनों गुणों में और गुणों की साम्यावस्था प्रकृति में एक ही अविनाशी परमात्मा विराजमान हैं। वे ही समस्त सौंदर्य, माधुर्य और ऐश्वर्यों की खान हैं। वे ही अंतर्यामी द्रष्टा के रूप में हैं और वे ही दृश्य जगत के रूप में भी हैं। सर्वथा अनिर्वचनीय तथा विकल्परहित होने पर भी द्रष्टा और दृश्य, व्याप्य और व्यापक के रूप में उनका निर्वचन किया जाता है। वस्तुतः, उनमें एक भी विकल्प नहीं है। वे केवल अनुभवस्वरूप, आनंदस्वरूप एकमात्र परमेश्वर ही हैं। गुणमयी सृष्टि करनेवाली माया के द्वारा ही उनका ऐश्वर्य छिप रहा है। इसके निवृत्त होते ही उनके दर्शन हो जाते हैं।

इसलिए तुम लोग अपने दैत्यपने का, आसुरी संपत्ति का त्याग करके समस्त प्राणियों पर दया करो, प्रेम से उनकी भलाई करो। इसीसे भगवान प्रसन्न होते हैं। आदिनारायण अनंत भगवान के प्रसन्न हो जाने पर ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो नहीं मिल जाती ? लोक और परलोक के लिए जिन धर्म, अर्थ आदि की आवश्यकता बतलायी जाती है, वे तो गुणों के परिणाम से बिना प्रयास के स्वयं ही मिलनेवाले हैं। जब हम श्रीभगवान के चरणामृत का सेवन करने और उनके नाम-गुणों का कीर्तन करने में लगे हैं, तब हमें मोक्ष की भी क्या आवश्यकता है ? यों शास्त्रों में धर्म, अर्थ और काम - इन तीनों पुरुषार्थों का भी वर्णन है। आत्मविद्या, कर्मकांड, न्याय (तर्कशास्त्र), दंडनीति और जीविका के विविध साधन - ये सभी वेदों में निरूपित विषय हैं, परंतु यदि ये अपने परम हितैषी, परम पुरुष भगवान श्रीहरि को आत्मसमर्पण करने में सहायक हैं, तभी मैं इन्हें सत्य (सार्थक) मानता हूँ। अन्यथा ये सब-के-सब निरर्थक हैं। यह निर्मल ज्ञान, जो मैंने तुम लोगों को बतलाया है, बड़ा ही दुर्लभ है। इसे पहले नर-नारायण ने नारदजी को दिया था और यह ज्ञान उन सब लोगों को प्राप्त हो सकता है, जिन्होंने भगवान के अनन्य प्रेमी एवं अकिंचन भक्तों के चरणकमलों की धूलि से अपने शरीर को नहला लिया है। यह विज्ञानसहित ज्ञान विशुद्ध भागवतधर्म है। इसे मैंने भगवान के दर्शन करानेवाले देवर्षि नारदजी के श्रीमुख से ही पहले-पहल सुना था।"

(क्रमशः)

देवर्षि नारदजी का सत्संग सुनते हुए गर्भिणी कयाधू

गंगाजी में स्नान, जलपान और पितरों का तर्पण करने से महापातकों की राशि का प्रतिदिन क्षय होता रहता है।

गंगा माहात्म्य

एक ब्राह्मण प्रयागराज से ५ कोस (१ कोस = करीब २ मील) की दूरी पर रहता था। वह प्रत्येक संक्रांति के दिन स्नान करने के लिए प्रयाग में जाया करता था। माघ मास की संक्रांति के दिन तो वह अपने परिवारसहित अवश्य ही वहाँ जाता था।

जब वह ब्राह्मण बूढ़ा और चलने में असमर्थ हो गया, तब एक बार माघ की संक्रांति आने पर उसने अपने पुत्र को बुलाकर कहा :

''हे पुत्र ! तुम प्रयागराज जाओ, त्रिवेणी में स्नान करके मेरे लिए भी त्रिवेणी के जल की गागर भरकर लाना और संक्रांति के पुण्यकाल में मुझे स्नान कराना, देर मत करना।''

पिता के वचन का पालन करते हुए उसका पुत्र प्रयाग के लिए चल पड़ा। त्रिवेणी में स्नान कर जब वह जल से भरी गागर पिता के स्नान के लिए ला रहा था तो रास्ते में उसे एक प्रेत मिला। वह प्यास के कारण बहुत व्याकुल हो रहा था और गंगाजल पीने की इच्छा से रास्ते में पड़ा था।

लड़के ने प्रेत से कहा : ''मुझे रास्ता दो।''

प्रेत : ''तुम कहाँ से आये हो ? तुम्हारे सिर पर क्या है ?''

''त्रिवेणी का जल है।''

''मैं इसी इच्छा से रास्ते में पड़ा हूँ कि कोई दयालु मुझे गंगाजल पिलाये तो मैं इस प्रेत-योनि से मुक्त हो जाऊँ क्योंकि मैंने गंगाजल का प्रभाव अपने नेत्रों से देखा है।''
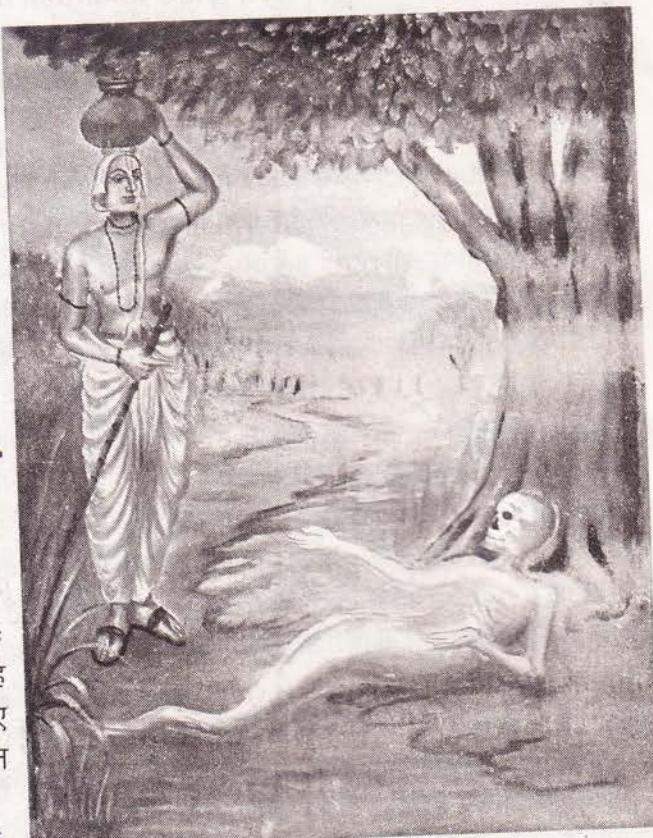
''क्या प्रभाव देखा है ?''

''एक ब्राह्मण बड़ा विद्वान था। उसने शास्त्रार्थ द्वारा दिग्विजय प्राप्त करके बहुत धन उपार्जित कर रखा था। लेकिन क्रोधवश उसने किसी ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण को मार दिया। उस पाप के कारण मरने पर वह ब्रह्मराक्षस हुआ और हमारे साथ ८ वर्षों तक रहा। ८ वर्षों के बाद उसके पुत्र ने उसकी हड्डियाँ लाकर श्रीगंगाजी के निर्मल तीर्थ कनखल में डालकर गंगाजी से प्रार्थना की : 'हे पापनाशिनी गंगा माते ! मेरे पिता को सद्गति प्रदान कीजिये।'

तब तत्काल ही वह ब्राह्मण ब्रह्मराक्षस भाव से मुक्त हो गया। उसीने मरते समय मुझे गंगाजल का माहात्म्य सुनाया था। मैं उसको मुक्त हुआ देखकर गंगाजल-पान की इच्छा से यहाँ पड़ा हूँ। अतः मुझको भी गंगाजल पिलाकर मुक्त कर दे, तुझे महान पुण्य होगा।''

''मैं लाचार हूँ क्योंकि मेरे पिता बीमार हैं और उनका संक्रांति के स्नान का नियम है। यदि मैंने यह गंगाजल तुझे पिला दिया तो स्नान के पुण्यकाल तक न पहुँचने के कारण मेरे

पिता का नियम भंग हो जायेगा।''

''तुम्हारे पिता का नियम भी भंग न हो और मेरी भी सद्‌गति हो जाय, ऐसा उपाय करो। पहले मुझे जल पिला दो, फिर नेत्र बंद करने पर मैं तुम्हें तत्काल श्रीगंगाजी के तट पर पहुँचाकर, तुम्हारे पिता के पास पहुँचा दूँगा।''

ब्राह्मणपुत्र ने प्रेत की दुर्दशा पर दया करके उसे जल पिला दिया। तब प्रेत ने कहा :

''अब नेत्र बंद करो और त्रिवेणी का जल लिये हुए स्वयं को अपने पिता के पास पहुँचा हुआ पाओ।''

ब्राह्मणपुत्र ने नेत्र बंद किये, फिर देखा कि वह त्रिवेणी के जल से गागर भरकर पिताजी के पास पहुँच गया है।

गंगाजी की महिमा के विषय में भगवान व्यासजी 'पद्म पुराण' में कहते हैं :

''अविलंब सद्‌गति का उपाय सोचनेवाले सभी स्त्री-पुरुषों के लिए गंगाजी ही एक ऐसा तीर्थ हैं, जिनके दर्शनमात्र से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं।

गंगेति स्मरणादेव क्षयं याति च पातकम् ।
कीर्तनादतिपापानि दर्शनाद् गुरुकल्मषम् ॥
स्नानात् पानाच्च जाह्नव्यां पितॄणां तर्पणात्तथा ।
महापातकवृन्दानि क्षयं यान्ति दिने दिने ॥
अग्निना दह्यते तूलं तृणं शुष्कं क्षणाद् यथा ।
तथा गंगाजलस्पर्शात् पुंसां पापं दहेत् क्षणात् ॥

'गंगाजी के नाम का स्मरण करनेमात्र से पातक, कीर्तन से अतिपातक और दर्शन से भारी-भारी पाप (महापातक) भी नष्ट हो जाते हैं। गंगाजी में स्नान, जलपान और पितरों का तर्पण करने से महापातकों की राशि का प्रतिदिन क्षय होता रहता है। जैसे अग्नि का संसर्ग होने से रुई और सूखे तिनके क्षणभर में भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार गंगाजी अपने जल का स्पर्श होने पर मनुष्यों के सारे पाप एक ही क्षण में दग्ध कर देती हैं।'

(पद्म पुराण, सृष्टि खंड : ६०.५-७)

जो विधिपूर्वक संकल्पवाक्य का उच्चारण करते हुए गंगाजी के जल में पितरों के उद्देश्य से पिंडदान करता है, उसे प्रतिदिन सौ यज्ञों का फल प्राप्त होता है। जो लोग गंगाजी के जल में अथवा तट पर आवश्यक सामग्रियों से तर्पण और पिंडदान करते हैं, उन्हें अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति होती है। जो अकेला भी गंगाजी की यात्रा करता है, उसके पितरों की कई पीढ़ियाँ पवित्र हो जाती हैं। एकमात्र इसी महापुण्य के बल पर वह स्वयं भी तरता है और अपने पितरों को भी तार देता है।''

भगवान शंकर नारदजी से कहते हैं : ''समुद्रसहित पृथ्वी का दान करने से मनीषी पुरुष जो फल पाते हैं, वही फल गंगा-स्नान करनेवाले को सहज में प्राप्त हो जाता है।''

राजा भगीरथ ने भगवान शंकर की आराधना करके गंगाजी को स्वर्ग से पृथ्वी पर उतारा था। जिस दिन वे गंगाजी को पृथ्वी पर लेकर आये वही दिन 'गंगा दशहरा' के नाम से जाना जाता है। गंगा दशहरे के दिन गंगाजी में गोता लगाने से विशेष पुण्य प्राप्त होता है।

'देवी भागवत' के एक प्रसंग में भगवान श्रीहरि गंगाजी से कहते हैं : ''जो तुम्हारी स्तुति और तुम्हें प्रणाम करेगा, उसको अश्वमेध यज्ञ का फल सुलभता से प्राप्त होगा। चाहे कोई सैकड़ों योजन की दूरी पर क्यों न हो, किंतु यदि 'गंगा' इस नाम का उच्चारण करके स्नान करता है तो वह सम्पूर्ण पापों से छूटकर अंत में विष्णुलोक में चला जाता है।

मृत व्यक्ति का शव बड़े पुण्य के प्रभाव से ही तुम्हारे अंदर आ सकता है। जितने दिनों तक उसकी एक-एक हड्डी तुममें रहती है, उतने समय तक वह वैकुंठ में वास करता है। कोई कहीं भी मरे, यदि उसके द्वारा मरते समय जिस किसी प्रकार से तुम्हारे नाम का स्मरण हो जाता है तो उसे मैं सालोक्य पद प्रदान करता हूँ। ब्रह्मा की आयुपर्यंत वह वहाँ रह सकता है।''

गंगाजी की महिमा का बखान करते हुए श्रुति कहती है : ''भारतवर्ष में मनुष्यों द्वारा उपार्जित करोड़ों जन्मों के पाप गंगाजी की वायु के स्पर्शमात्र से नष्ट हो जाते हैं।''

राजा भगीरथ ने भगवान शंकर की आराधना करके गंगाजी को स्वर्ग से पृथ्वी पर उतारा था।

श्रीमद् आद्य शंकराचार्य जयंती : १३ मई
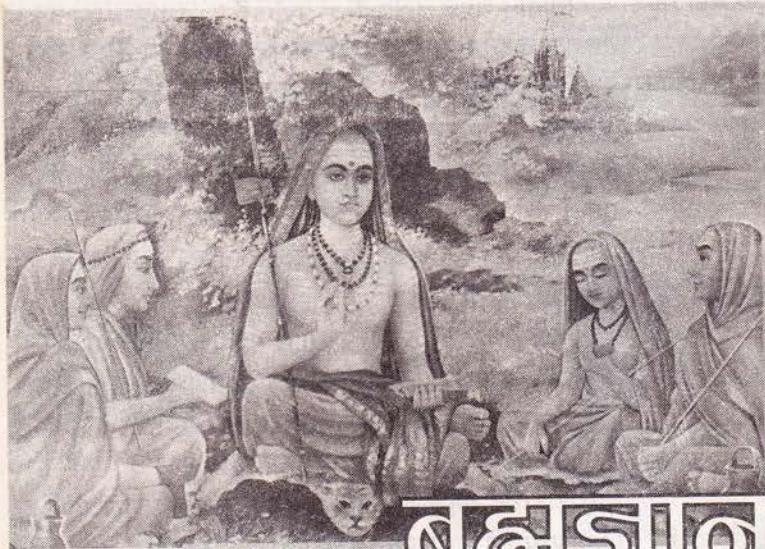
ब्रह्मज्ञान और योगसामर्थ्य

वैदिक संस्कृति मानवमात्र का कल्याण करने में समर्थ है । उसका प्रचार करनेवाले महान आत्मा आद्य शंकराचार्यजी का १६ वर्ष आयुष्य बढ़ाकर भगवान व्यासजी ने भारत पर ही नहीं, बल्कि समस्त मानव-समाज पर महान उपकार किया है ।

(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

श्रीमद् आद्य शंकराचार्य उच्चकोटि के ब्रह्मनिष्ठ संत थे । एक दिन वे उत्तरकाशी में अपने शिष्यों को 'ब्रह्मसूत्र-भाष्य' (शारीरिक सूत्र-भाष्य) पढ़ा रहे थे। तभी वहाँ एक वृद्ध ब्राह्मण आये। उन्होंने सेवकों से पूछा : ''यहाँ कौन-सी प्रवृत्ति होती है?''

सेवक बोले : ''यह हमारे गुरुजी भगवान शंकराचार्य का आश्रम है । यहाँ हमारे गुरुजी हमें 'ब्रह्मसूत्र' पढ़ाते हैं । उसका अर्थ समझाते हैं और व्याख्या करते हैं।''

ब्राह्मण बोले : ''कलियुग में ब्रह्मसूत्र ! उसकी व्याख्या करते हैं ? उसका अर्थ समझाते हैं ?''

''हाँ।''

''अच्छा ! हमें भी थोड़ा समझा देंगे तुम्हारे गुरुजी तो हमें बड़ा आनंद होगा।''

''तो आइये हमारे साथ।''

वे ब्राह्मण वेशधारी पुरुष बड़े महान आत्मा थे । वे शंकराचार्यजी के पास जाकर बोले : ''मुझे ब्रह्मसूत्र के विषय में कुछ शंकाएँ हैं, आप उनका समाधान कीजिये।''

शंकराचार्यजी बोले : ''पूछिये ब्राह्मणदेव !''

''अच्छा, बताइये तो तृतीय अध्याय के प्रथम पाद के प्रथम सूत्र का तात्पर्य क्या है ?''

शंकराचार्यजी ने उस सूत्र की उत्तम व्याख्या की। उस उत्तर में से और प्रश्न उठा और ब्राह्मण ने फिर से पूछा।

आचार्य ने तत्काल उसका यथायोग्य उत्तर दे दिया । ब्राह्मण ने पुनः प्रश्न उठाया। आचार्य ने उसका भी जवाब दे दिया।

ब्राह्मण एक के बाद एक प्रश्न करते जा रहे थे और शंकराचार्यजी उनका उत्तर देते जा रहे थे।

सात दिन तक यह प्रश्नोत्तर चला और वे ब्राह्मण संतुष्ट होकर बोले : ''आपसे मुझे मेरे ब्रह्मसूत्र से सम्बंधित प्रश्नों के उत्तर ठीक-से मिल गये हैं। आप ब्रह्मसूत्र ठीक-से समझे हैं, मैं आप पर प्रसन्न हूँ।''

उस वृद्ध ब्राह्मण ने आशीर्वाद देते हुए अपना वास्तविक रूप प्रकट कर दिया। शंकराचार्यजी ने उनके चरणों में सिर झुकाया और बोले : ''भगवान श्री वेदव्यासजी ! आप...''

व्यासजी बोले : ''पुत्र ! तुम्हारा आयुष्य पूरा होने को है। सोलह वर्ष की उम्र है तुम्हारी। मैं सोलह वर्ष तुम्हारी उम्र और बढ़ा देता हूँ।''

आद्य शंकराचार्यजी का शरीर और सोलह साल तक रहा। वैदिक संस्कृति मानवमात्र का कल्याण करने में समर्थ है। उसका प्रचार करनेवाले इन महान आत्मा का १६ वर्ष आयुष्य बढ़ाकर भगवान व्यासजी ने भारत पर ही नहीं, बल्कि समस्त मानव-समाज पर महान उपकार किया है।

भारत में कैसे-कैसे ब्रह्मवेत्ता हो गये ! और ब्रह्मज्ञान के साथ-साथ योगसामर्थ्य ! वह तो किसी विरले में ही होता है। योगी तो कोई हो भी जाय लेकिन ब्रह्मवेत्ता होना मुश्किल है। ब्रह्मज्ञान और योगसामर्थ्य दोनों का होना - ऐसी तो कभी-कभार घटना घटती है। जैसे - सात सौ वर्ष पहले योगी चांगदेव हो गये। सौ वर्ष उम्र पूरी होने पर जब मृत्यु का समय आता, तब वे योगबल से प्राणों को ऊपर चढ़ा लेते, दस दिन की समाधि लगाते और मृत्यु का समय टल जाता। ऐसा करते-करते उन्होंने तेरह बार मौत को टाल दिया। जब वे चौदह सौ वर्ष के हुए तब ब्रह्मवेत्ता ज्ञानेश्वर महाराज आलंदी में प्रकट हुए और चांगदेव आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए उनकी शरण में गये।

योगी ऋद्धि-सिद्धि दे सकता है लेकिन आत्मस्वरूप का ज्ञान तो आत्मवेत्ता सद्गुरु ही करा सकते हैं। काली माता ने श्री रामकृष्ण परमहंस से कहा : ''हम देवता लोग तुम्हें जगत का कुछ भी दे सकते हैं लेकिन आत्मज्ञान तो तुम्हें आत्मवेत्ता सद्गुरु से ही मिलेगा।''

आत्मज्ञान का भाषण देनेवाले गुरु तो बहुत मिल जायेंगे लेकिन आत्मज्ञान का अनुभव करके बोलनेवाले सद्गुरु का मिलना कठिन है। सद्गुरु मानव-जीवन के सच्चे निर्माता हैं। मानव में आयी हुई दानवता को नष्ट कर उसे महेश्वर बनाने का सामर्थ्य सच्चे सद्गुरु में ही होता है।

मिल जायें आत्ममस्ती में रमण करनेवाले ऐसे संत-महापुरुष तो आप उनके चरणों में अपना अहं अर्पण कर देना। वे आपको शिवस्वरूप में विश्रांति दिला देंगे। वे आपको शाश्वत, सनातन सत्य का साक्षात्कार करा देंगे, जो आपके जीवन का वास्तविक लक्ष्य है।

सत्संग को महत्त्व दें

एक भक्त ने स्वामी श्री रामसुखदासजी से प्रश्न किया : ''आपको आध्यात्मिक लाभ कैसे हुआ ?''

स्वामीजी ने प्रत्युत्तर दिया :

''मुझे तो सत्संग से लाभ हुआ है। मैं साधन को इतना महत्त्व नहीं देता, जितना सत्संग को देता हूँ। दूसरों के लिए भी मैं समझता हूँ कि अगर वे मन लगाकर, गहरे उतरकर सत्संग की बातें समझें तो उन्हें बहुत लाभ हो सकता है। एक विशेष बात कह देता हूँ कि अगर आप सत्संग को महत्त्व दें और उसे गहरे उतरकर समझें तो मुझे जितने वर्ष लगे, उतने वर्ष आपको नहीं लगेंगे। बहुत जल्दी आपकी उन्नति होगी ऐसा मेरे को स्पष्ट दिखता है, मेरे को संदेह नहीं है इस बात पर। इस विषय में मैं आपको अयोग्य या अनधिकारी नहीं मानता हूँ।

आपमें जो कमी है उसे दूर करने का सामर्थ्य आपमें पूरा है। मेरी धारणा में आपमें केवल ईश्वरप्राप्ति की उत्कंठा की कमी है। यदि उत्कंठा जाग्रत हो जाय तो आप पापी-से-पापी हों, मूर्ख-से-मूर्ख हों और आपके पास थोड़े-से-थोड़ा समय हो तो भी आपका उद्धार हो सकता है। उत्कंठा जाग्रत होगी संसार की लगन का त्याग करने से।

कबीरा मनुआँ एक है, भावे जहाँ लगाये।
भावे हरि की भगति कर, भावे विषय कमाय ॥

सांसारिक संग्रह और भोगों में जो लगन लगी है, उसको मिटा दो तो परमात्मप्राप्ति की सच्ची लगन लग जायेगी। 'इतना रुपया हो गया इतना और हो जाय, इतना सुख भोग लें, ऐश-आराम कर लें, मान मिल जाय, बड़ाई मिल जाय, नीरोगता मिल जाय, समाज में मेरा ऊँचा स्थान हो जाय, हम ऐसे बन जायें...' - ये जितनी इच्छाएँ हैं, इनका त्याग करें तो आपको सच्ची लगन लग जायेगी।

जितनी लगन लगनी चाहिए उतनी नहीं लग रही है तो इसका कारण यह है कि जितना त्याग होना चाहिए उतना नहीं हो रहा है।

त्याग क्या है ? 'गीता' ने इच्छा के त्याग को ही 'त्याग' कहा है।''

परमात्मप्राप्ति की इच्छा तीव्र होने से ऐहिक इच्छा मिटाना सरल हो जायेगा।

व्रत : एक शाश्वत चिकित्सा

यह विज्ञान का अभिशाप है कि जब जरूरत पड़े तब व्रत कर लो। जिस दिन डॉक्टर सलाह दे कि आज नहीं खाना उस दिन नहीं खाया। डॉक्टर की सलाह पर भूखे रहे यह व्रत नहीं हुआ। विवशता का व्रत धर्म का उत्पादक नहीं होता। श्रद्धामूलक, विहित जो व्रत होता है, वह धर्मोत्पादक होता है।

जो धर्म की शाश्वत निहित विधि है, आजकल उसका आदर नहीं करते हैं। यह वर्तमान मनोवृत्ति का, वर्तमान विज्ञान का एक अभिशाप है कि हम शाश्वत चिकित्सा को स्वीकार नहीं करते।

आपको देखो उदाहरण के रूप में बताते हैं। जैसे हमारे व्रत हैं, ये यदि ईश्वर की प्रसन्नता के लिए, आत्मशुद्धि के लिए और धर्मपालन के रूप में हों तो ये हमेशा रहेंगे। दो एकादशी हर महीने करो, अमावस्या और पूर्णिमा का व्रत करो, सोमवार, मंगलवार, गुरुवार का करो। भाद्रपद एक ऐसा मास आता है जिसमें समझो, शुक्लपक्ष के पंद्रह दिनों में से कम-से-कम दस दिन व्रत के हैं। जैसे - हरतालिका है, गणेश चतुर्थी है, ऋषि पंचमी है, लोलार्क षष्ठी है, दुर्गा सप्तमी है, राधा अष्टमी है, वामन द्वादशी है, अनंत चतुर्दशी है, पूर्णिमा है। कार्तिक, माघ और वैशाख मास में एक समय भोजन करना चाहिए। यह कार्तिकव्रत, माघव्रत, वैशाखव्रत है। ये तात्कालिक नहीं हैं, ये हमेशा करने चाहिए। देखो, मुसलमानों में रोजा रखा जाता है ईश्वर की प्रसन्नता के लिए, आत्मशुद्धि के लिए। तो व्रत में मनुष्य की निष्ठा होती है, वह जीवन के साथ हमेशा के लिए जुड़ा हुआ होता है।

जो लोग सामान्य जीवन व्यतीत करते हैं, वे कहते हैं : 'यह सब ढकोसला है, ढोंग है, ईश्वर कहाँ खुश होते हैं व्रत करने से, कहाँ आत्मशुद्धि होती है, कहाँ परलोक सुधरता है !' परंतु जब जरूरत पड़ती है, तब कहते हैं : 'अब आज से व्रत करो। ईश्वर के लिए जो व्रत है उसे छोड़ दो, अब आज से राष्ट्र के लिए व्रत करो।' यह चार महीने तक धारण करेंगे या समझो, राष्ट्र पर जब तक संकट है, तब तक धारण करेंगे और फिर छोड़ देंगे। यदि ये शाश्वत नियम के अंतर्गत धारण किये जाते तो मनुष्य के जीवन में बैठ जाते।

अतः आप व्रत को धर्म समझकर धारण करो, व्रत करना बहुत आवश्यक है जीवन में। इससे शरीर स्वस्थ बनता है, मन प्रसन्न रहता है, धर्माचरण हो जाता है और ईश्वर प्रसन्न होते हैं। इससे तप होता है और हम ईश्वर की ओर बढ़ते हैं। उपवास रखना, व्रत रखना बहुत अच्छा काम है। अगर किसी भी निमित्त से कोई कहे कि 'आज भाई ! कोई मर गया है, आज व्रत रख लो' तो व्रत रखना चाहिए। यह विज्ञान का अभिशाप है कि जब जरूरत पड़े तब व्रत कर लो। जिस दिन डॉक्टर सलाह दे कि आज नहीं खाना उस दिन नहीं खाया। डॉक्टर की सलाह पर भूखे रहे यह व्रत नहीं हुआ। भूखे रह जाने को व्रत नाम देना गलत हो गया। चाहिए तो यह कि महीने में दो-चार व्रत जरूर कर लिया करें, परंतु धर्म के लिए करें, अंतःशुद्धि के लिए करें।

जब जरूरत पड़े तब तो व्रत करना ही चाहिए। जब भौतिक रूप से व्रत आवश्यक हो जाय, तब तो जरूर ही करना पड़ता है, पर विवशता का व्रत धर्म का उत्पादक नहीं होता। श्रद्धामूलक, विहित जो व्रत होता है, वह धर्मोत्पादक होता है।

अब दूसरी बात अहिंसा की सुनाते हैं।

हिंसा-अहिंसा रहस्य

जिस देश में, जिस काल में, जिस व्यक्ति के लिए जैसी अहिंसा विहित है, माने शास्त्रोक्त है वह गुण है और जिस देश में, जिस काल में, जिस व्यक्ति के लिए जैसी अहिंसा निषिद्ध है, वह अहिंसा दोष है। जो भी अहिंसा निषिद्ध है, वह अहिंसा दोष है। अहिंसा भी निषिद्ध

होती है। राष्ट्रविप्लव होने पर, शत्रु का आक्रमण होने पर, धर्म की हानि का प्रसंग उपस्थित होने पर राजा का, क्षत्रिय का, राष्ट्र का कर्तव्य हो जाता है कि वह हिंसा करे।

अहिंसा जो होती है वह राष्ट्र का धर्म कभी नहीं होती। अहिंसा कभी राजधर्म नहीं होती। यह राजधर्म नहीं है, राष्ट्रधर्म नहीं है, सैनिक धर्म भी नहीं है। यदि शत्रु आक्रमण करे, चोर-लुटेरे लूटने लगें और अपनी सेना, अपना राष्ट्र अहिंसक बनकर हाथ-पर-हाथ रखकर बैठ जाय तो यह धर्म नहीं है। हमारे महात्मा लोग इस बात को समझते थे, वे कायर को अपराधी मानते थे। कायर से अच्छा तो वे हिंसक को मानते थे और हिंसक से ऊँची स्थिति यह है कि अपनी ओर से आक्रमण न किया जाय, कोई आक्रमण करे तो प्रतिहिंसा-प्रत्याक्रमण किया जाय। आततायी को मारो और उससे भी ऊँची अवस्था यह है कि यदि किसीको समाधि लगानी हो, तपस्या करनी हो, ज्ञानमार्ग से चलना हो, तत्त्वज्ञान प्राप्त करना हो, भगवद्भजन करना हो तो उस विशेष व्यक्ति को अहिंसा का व्रत ग्रहण करना चाहिए।

बोले : 'ज्ञान हो जाने पर हिंसा कि अहिंसा ?' नारायण ! ज्ञान हो जाने पर साधन के रूप में तो अहिंसा की जरूरत नहीं है और द्वेष से होनेवाली हिंसा की भी जरूरत नहीं है। तब हिंसा और अहिंसा में समता आती है, जहाँ युद्ध की आवश्यकता है वहाँ युद्ध होगा, जहाँ शांति की आवश्यकता है वहाँ शांति होगी। तत्त्वज्ञानी पुरुष निवृत्तिपरायण नहीं होता।

श्री उड़िया बाबाजी कहते थे कि ''यह निवृत्ति का जो विधान है शास्त्र में, वह जिज्ञासु के लिए है, ज्ञानी के लिए नहीं है। यह जो प्रवृत्ति का निषेध है यह जिज्ञासु के लिए है, ज्ञानी के लिए नहीं है।'' ज्ञानी प्रवृत्ति में पड़ेगा तो राज्य करेगा, प्रवृत्ति करेगा और निवृत्ति में पड़ेगा तो निवृत्त रहेगा। ज्ञान की दृष्टि से प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों समान हैं। असल में जिसमें प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों कल्पित हैं, वह आत्मसत्य अकल्पित है और हिंसा-अहिंसा ऐसे आती-जाती रहती हैं। सब लोग बाबाजी थोड़े ही हो जायेंगे। अरे, राज्य होगा तो उसमें प्रजा होगी, कर्मकर लोग होंगे, व्यापारी लोग होंगे, सैनिक होंगे, बुद्धिजीवी होंगे। चलो, सब कवियों को कह दो कि उनके हृदय में जो फुरना होती है उसके अनुसार कविता न लिखें, सब अन्न पर, बस पर, मोटर पर कविता लिखें तो ऐसे कोई कविता लिखी जायेगी ? कविता तो फुरने से लिखी जायेगी।

भीतर से ईश्वर फुरना देता है। इसलिए यदि कोई पक्ष कहे कि 'सबको हिंसा करनी चाहिए' तो वह गलत है और कोई कहे कि 'सबको अहिंसा धारण करनी चाहिए' तो वह भी गलत है। क्योंकि हिंसा और अहिंसा वस्तुरूप में न सत्य हैं, न ज्ञान हैं, न आनंद हैं। ये दोनों तो अस्ति-भाति-प्रिय (परमात्मा) के द्वारा प्रकाशित हैं। हिंसा-अहिंसा दोनों नामरूप हैं, जगद्रूप हैं, अध्यस्त हैं। अखंड ब्रह्म में न हिंसा की कोई कीमत है, न अहिंसा की कोई कीमत है। इसलिए शास्त्रोक्त रीति से व्यवहार में बर्तना चाहिए। *(श्री अखंडानंदजी सरस्वती के सत्संग से संकलित)*

श्री अखंडानंदजी सरस्वती

अहिंसा
राजधर्म, राष्ट्रधर्म या
सैनिक धर्म नहीं है। यदि
शत्रु आक्रमण करे,
चोर-लुटेरे लूटने लगें और
अपनी सेना, अपना राष्ट्र
अहिंसक बनकर
हाथ-पर-हाथ रखकर
बैठ जाय तो
यह धर्म नहीं है।
हमारे महात्मा लोग
कायर को
अपराधी मानते थे। कायर
से अच्छा तो वे हिंसक को
मानते थे।

संत तिरुवल्लुवरजी की धीरत

(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

तिरुवल्लुवर नाम के एक संत हो गये जो कबीरजी की तरह ही ताना-बुनी करते थे। उनकी पत्नी तथा बच्चे उन्हें इस काम में मदद करते थे। इस तरह वे रोज दो साड़ियाँ तैयार कर लेते। तब दो रुपये में एक साड़ी बिकती थी, आज के ५०-६० रुपये समझ लो। दो साड़ी के चार रुपये आते थे। उससे परिवार का गुजारा करते और दूसरा नया माल भी खरीदते थे।

धीरे-धीरे संत का प्रभाव इतना बढ़ गया कि गाँव के लोग प्रतिदिन सुबह उनके घर आकर कीर्तन-भजन करने लगे और शाम को जब संत साड़ी बेचकर आते तब भी लोग सत्संग सुनने के लिए आकर बैठ जाते। इस तरह पूरे गाँव में उनकी कीर्ति फैल गयी।

प्रकृति का यह अकाट्य सिद्धांत है कि जिसका यश होता है उसकी निंदा भी शुरू हो जाती है। गाँव के लोगों ने वहाँ के बड़े सेठ से कहा : ''अपने गाँव में तिरुवल्लुवर नाम के एक बड़े अच्छे संत हैं। उनके यहाँ हम लोग सत्संग सुनने जाते हैं। आप भी उनके दर्शन-सत्संग का लाभ लेने आइये।''

अहंकारी सेठ ने कहा : ''वे हमसे बड़े थोड़े ही हैं। हम नहीं आ पायेंगे।''

लोगों के चले जाने पर सेठ ने अपने युवान पुत्र से कहा : ''कुछ भी करके तिरुवल्लुवर की यश-कीर्ति को धूल में मिलाना पड़ेगा।''

पुत्र ने कहा : ''पिताजी ! मैं एक युक्ति करता हूँ, जिससे वे क्रोधित हो जायेंगे। फिर हम प्रचार कर देंगे कि यह क्रोधी है, कामी है, लोभी है...''

वह युवक तिरुवल्लुवरजी के पास साड़ी खरीदने का बहाना बनाकर गया और एक साड़ी देखते हुए बोला : ''यह साड़ी कितने रुपये में दोगे ?''

''बेटा ! यह दो रुपये की है।''

युवक को साड़ी तो खरीदनी थी नहीं। उसने साड़ी के दो टुकड़े कर दिये और पूछा : ''पूरी साड़ी दो रुपये की है तो यह आधी कितने की है ?''

संत तिरुवल्लुवर समझ गये कि यह मुझे सताने के लि आया है। उन्होंने बड़ी शांति से कहा : ''आधी साड़ी ए रुपये की होगी।''

युवक ने साड़ी के चार टुकड़े करते हुए कहा : ''य चौथाई टुकड़ा कितने का हुआ ?''

''अठन्नी (आधे रुपये) का।''

फिर उन चार टुकड़ों के आठ टुकड़े करके उसने ए टुकड़े का दाम पूछा तो संत ने बड़ी शांति से जवाब दिया ''चवन्नी (चौथाई रुपया)।''

युवक ने देखा कि अभी तक तिरुवल्लुवर के चेहरे पर शिकन की एक रेखा भी नहीं आयी, कितना धैर्य है ! वह घर जाने लगा किंतु अंतर्यामी परमात्मा ने उसे भीतर से फटकारा कि 'तूने कितना पाप किया है !'

इस प्रकार वह टुकड़े करता गया और संत जवाब देते गये। आखिर में उसने साड़ी के ६४ टुकड़े कर दिये जो किसी काम के न रहे।

फिर बोला : ''ये टुकड़े मेरे किसी काम के नहीं हैं। मुझे नहीं चाहिए।''

संत ने कहा : ''नहीं चाहिए तो कोई बात नहीं।''

युवक ने देखा कि अभी तक इनके चेहरे पर शिकन की एक रेखा भी नहीं आयी, कितना धैर्य है ! वह घर जाने लगा किंतु अंतर्यामी परमात्मा ने उसे भीतर से फटकारा कि 'तूने कितना पाप किया है !'

व्यक्ति जितना धीर होता है उतना सामनेवाले के चित्त पर गहरा प्रभाव पड़ता है। संत के धैर्ययुक्त वचन सुनकर युवक के हृदय में हुआ कि संत ने ताना-बुनी करके, परिश्रम करके दो साड़ियाँ बनायीं औ मैंने एक के टुकड़े-टुकड़े कर दिये, फिर भी वे कुछ न बोले। वह संत तिरुवल्लुवर के पास वापस आया और बोला : ''महाराज ! मैं बड़ा निष्ठुर हूँ। मुझे साड़ी नहीं लेनी थी, केवल आपको सताना था। मैंने आपको सताने के, क्रोधित करने के सारे प्रयास किये किंतु आप क्रोधित न हुए। मैंने आपकी साड़ी के दो टुकड़े कर दिये तभी आपको क्रोधित हो जाना चाहिए था किंतु ६४ टुकड़े कर देने के बावजूद भी आप क्रोधित न हुए। फिर मैं इन टुकड़ों को छोड़कर जाने लगा तब भी आप क्रोधित न हुए। आपको दो रुपये का नुकसान हुआ

संत तिरुवल्लुवरजी : ''मैं तेरे दो रुपये लेकर अधीर हो जाता तो तेरा जीवन भी टुकड़े-टुकड़े हो जाता । किंतु अब तू किसीको सतायेगा नहीं और तेरा जीवन भी टुकड़े-टुकड़े होने से बच जायेगा ।''
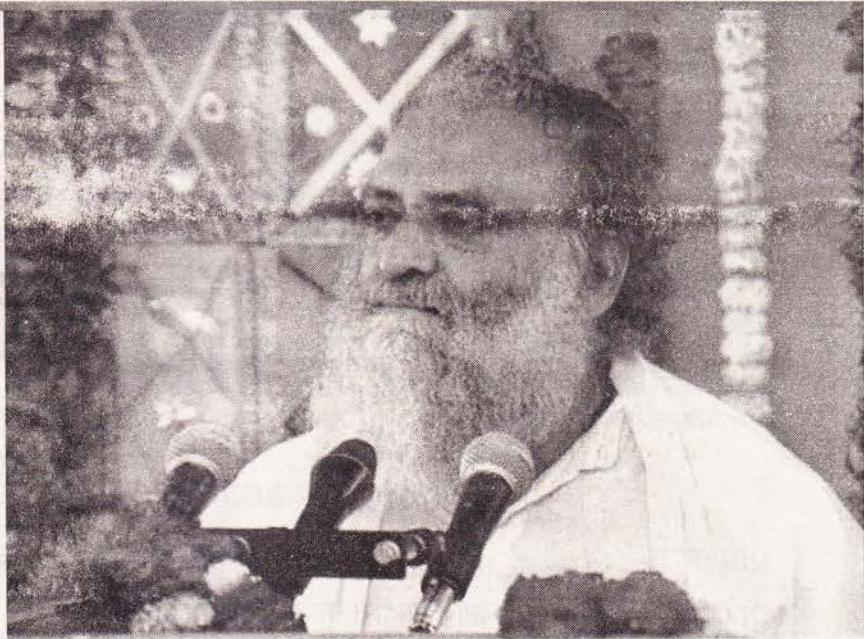
है, इसलिए आप दो रुपये ले लीजिये और साड़ी के टुकड़े मुझे दे दीजिये।''

''बेटा ! ये टुकड़े अब तेरे किसी काम के नहीं हैं तो क्यों ले जा रहा है ? तेरे दो रुपये क्यों फालतू जायें ?''

''महाराज ! टुकड़े मेरे कोई काम नहीं आयेंगे, किंतु मैं आपकी साड़ी की कीमत दे रहा हूँ ताकि आपका दो रुपये का घाटा पूरा हो जाय। मेरे पास पैसों की कोई कमी नहीं है।''

''तेरे पास दो रुपये फालतू हैं, वे तू मुझे दे रहा है। पर इस साड़ी के पीछे कितने लोगों ने परिश्रम किया है - किसान ने कपास उगायी होगी, रुई पींजनेवालों ने पिंजाई की होगी, पूनी बनानेवालों ने पूनी बनायी होगी, सूत कातनेवालों ने काता होगा । उसके बाद मेरी पत्नी और पुत्रों ने मिलकर साड़ी तैयार की और तूने उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। साड़ी बनाने का परिश्रम तो तब सार्थक होता जब वह किसीके उपयोग में आती। अब यह साड़ी किसीके काम तो आयेगी नहीं। इसलिए ये दो रुपये तू ही ले जा, बेटा !''

तिरुवल्लुवरजी धीरज और प्रेम से उसे 'बेटा' कहकर संबोधित किये जा रहे थे और उसका हृदय परिवर्तित होता जा रहा था। आखिर वह संत के श्रीचरणों में गिर पड़ा और बोला : ''मुझे माफ कर दीजिये, महाराज !''

तब तिरुवल्लुवरजी ने उसे गले लगाते हुए कहा : ''बेटा ! कोई बात नहीं। अधीरता एवं ईर्ष्या के कारण व्यक्ति ऐसे कर्म कर बैठता है। मैं तेरे दो रुपये लेकर अधीर हो जाता तो तेरा जीवन भी टुकड़े-टुकड़े हो जाता । किंतु अब तू किसीको सतायेगा नहीं और तेरा जीवन भी टुकड़े-टुकड़े होने से बच जायेगा।''

कितना गजब का धैर्य था संत तिरुवल्लुवर में ! धीर पुरुष दुःख के समय धैर्य धारण कर लेते हैं और दूसरों को भी दुःख से बचा लेते हैं, जबकि अधीर व्यक्ति स्वयं तो परेशान होता ही है, साथ ही दूसरों को भी परेशान कर देता है।

परंतु कभी-कभी आत्मारामी महापुरुष भी खिन्न होते हुए दिखते हैं, लेकिन खिन्न नहीं होते। **खिन्नोऽपि न च खिद्यते। (अष्टावक्र गीता : १८.५६)** उन्हें समझने में भूल न करना।

कभी-कभी रमण महर्षि कुतर्क करके प्रश्न पूछनेवाले के पीछे डंडा लेकर दौड़ पड़ते थे । कभी-कभी महापुरुष सत्संग में सुव्यवस्था, अनुशासन बनाये रखने के लिए गर्जना भी करते हैं। उनका ऐसा व्यवहार देखकर कहीं धोखे में नहीं पड़ना।

संत तिरुवल्लुवरजी की वाणी

* इच्छारहित, निर्विकल्प होकर भगवान का भजन करनेवालों को कभी दुःख की प्राप्ति नहीं होगी।
* भगवान हृषीकेश के सत्य-पथ पर सुदृढ़ रहनेवाले अमर रहेंगे।
* जो लोग हमारे स्वामी परमेश्वर की कृपा-ज्योति प्राप्त नहीं करते, क्या वे जन्म-मरण के सागर के पार जा सकते हैं ?

(तमिल वेद 'कुरल' से)

भगवान जगन्नाथजी

मैं भक्तन को दास

(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

प्राणिमात्र के परम सुहृद भगवान भक्तजनों के सर्वस्व हैं। वे सर्वसमर्थ भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए न जाने किन-किन रूपों में प्रकट होकर कैसी-कैसी लीलाएँ करते हैं!

एक संत थे जिनका नाम था जगन्नाथदास महाराज। वे भगवान को प्रीतिपूर्वक भजते थे। वे जब वृद्ध हुए तो थोड़े बीमार रहने लगे। उनके मकान की ऊपरी मंजिल पर वे स्वयं और नीचे उनके शिष्य रहते थे। रात को एक-दो बार बाबा को दस्त लग जाते थे, इसलिए 'खट-खट' की आवाज करते तो कोई एक शिष्य आ जाता और उनका हाथ पकड़कर उन्हें शौचालय में ले जाता। बाबा की सेवा करनेवाले वे शिष्य जवान लड़के थे। एक रात बाबा ने खटखटाया तो कोई आया नहीं।

बाबा बोले : ''अरे, कोई आया नहीं! बुढ़ापा आ गया, प्रभु!'' इतने में एक युवक आया और बोला : ''बाबा! मैं आपकी मदद करता हूँ।''

बाबा का हाथ पकड़कर वह उन्हें शौचालय में ले गया। फिर हाथ-पैर धुलाकर बिस्तर पर लेटा दिया। जगन्नाथदासजी बोले : ''यह कैसा सेवक है कि इतनी जल्दी आ गया! इसके स्पर्श से आज अच्छा लग रहा है, आनंद-आनंद आ रहा है।''

जाते-जाते वह युवक लौटकर आ गया और बोला : ''बाबा! जब भी तुम ऐसे 'खट-खट'

"मंद प्रारब्ध सत्कर्म से, दान-पुण्य से, भक्ति से मिट जाता है । तीव्र प्रारब्ध अपने पुरुषार्थ और भगवान के, संत-महापुरुषों के आशीर्वाद से मिट जाता है । परंतु तरतीव्र प्रारब्ध तो मुझे भी भोगना पड़ता है ।"

करोगे न, तो मैं आ जाया करूँगा । तुम केवल विचार भी करोगे कि 'वह आ जाय' तो मैं आ जाया करूँगा।''

''बेटा ! तुम्हें कैसे पता चलेगा ?''

''मुझे पता चल जाता है।''

''अच्छा ! रात को सोता नहीं क्या ?''

''हाँ, कभी सोता हूँ, झपकी ले लेता हूँ। मैं तो सदा सेवा में रहता हूँ।''

जगन्नाथदास महाराज रात को 'खट-खट' करते तो वह युवक झट आ जाता और बाबा की सेवा करता। ऐसा करते-करते कई दिन बीत गये।

जगन्नाथदासजी सोचते कि 'यह लड़का सेवा करने तुरंत कैसे आ जाता है ?'

एक दिन उन्होंने उस युवक का हाथ पकड़कर पूछा कि ''बेटा ! तेरा घर कहाँ है ?''

''यहीं पास में ही है। वैसे तो सब जगह है।''

''अरे ! तू क्या बोलता है, सब जगह तेरा घर है ?''

बाबा की सुंदर समझ जगी। उनको शक होने लगा कि 'हो न हो, यह है तो अपनेवाला ही, जो किसीका बेटा नहीं लेकिन सबका बेटा बनने को तैयार है, बाप बनने को तैयार है, गुरु बनने को तैयार है, सखा बनने को तैयार है...'

बाबा ने कसकर युवक का हाथ पकड़ा और पूछा : ''सच बताओ, तुम कौन हो ?''

''बाबा ! छोड़ो, अभी मुझे कई जगह जाना है।''

''अरे ! कई जगह जाना है तो भले जाना, लेकिन तुम कौन हो यह तो बताओ।''

''अच्छा, बताता हूँ।''

देखते-देखते भगवान जगन्नाथ का दिव्य विग्रह प्रकट हो गया।

''देवाधिदेव ! **सर्वलोके एकनाथ !** सभी लोकों के एकमात्र स्वामी ! आप मेरे लिए इतना कष्ट सहते थे ! रात्रि को आना, शौचालय ले जाना, हाथ-पैर धुलाना... प्रभु ! जब आप मेरा इतना ख्याल रख रहे थे तो मेरा रोग क्यों नहीं मिटा दिया ?''

तीन प्रकार का प्रारब्ध

मंद तीव्र तरतीव्र

तब मंद-मंद मुस्कराते हुए भगवान ने कहा : ''महाराज ! तीन प्रकार का प्रारब्ध होता है : मंद, तीव्र और तरतीव्र।

मंद प्रारब्ध सत्कर्म से, दान-पुण्य से, भक्ति से मिट जाता है । तीव्र प्रारब्ध अपने पुरुषार्थ और भगवान के, संत-महापुरुषों के आशीर्वाद से मिट जाता है । परंतु तरतीव्र प्रारब्ध तो मुझे भी भोगना पड़ता है। रामावतार में मैंने बालि को छुपकर बाण मारा था तो कृष्णावतार में उसने व्याध बनकर मेरे पैर में बाण मारा।

तरतीव्र प्रारब्ध सभीको भोगना पड़ता है। आपका रोग मिटाकर प्रारब्ध दबा दूँ, फिर क्या पता उसे भोगने के लिए आपको दूसरा जन्म लेना पड़े और तब कैसी स्थिति हो जाय ? इससे तो अच्छा है अभी पूरा हो जाय। ...और मुझे आपकी सेवा करने में किसी कष्ट का अनुभव नहीं होता। **भक्त मेरे मुकुटमणि, मैं भक्तन को दास।**''

''प्रभु ! प्रभु ! प्रभु ! हे देव ! हे देव !...'' कहते हुए जगन्नाथदास महाराज भगवान के चरणों में गिर पड़े और भगवन्माधुर्य में, भगवत्शांति में खो गये। भगवान अंतर्धान हो गये।

प्राणिमात्र के परम सुहृद भगवान भक्तजनों के सर्वस्व हैं। वे सर्वसमर्थ भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए न जाने किन-किन रूपों में प्रकट होकर कैसी-कैसी लीलाएँ करते हैं !

भगवान भक्त के परम हितैषी हैं। उन्हींकी शरण में रहने में आनंद है... उन्हींकी स्मृति में आनंद है।

बालक की देशभक्ति

तपती दोपहरी में अरावली की पर्वतमालाओं के बीच राणाप्रताप अपने पुत्र, पत्नी व नन्ही बेटी को साथ लिये किसी नये सुरक्षित स्थान की खोज में आगे बढ़े जा रहे थे। यह चित्तौड़ की पराधीनता का समय था। अकबर के सैनिक इस पहाड़ी के चप्पे-चप्पे में फैले हुए थे। 'न जाने कब, कहाँ शत्रु-सैनिक आ पहुँचें ?' इस आशंका से राणाप्रताप आज यहाँ तो कल वहाँ इस प्रकार जगह पर जगह बदलते जा रहे थे। कभी-कभी तो ऐसे अवसर भी आते कि उन्हें अधपका भोजन छोड़कर भागना पड़ता। दो-दो, तीन-तीन दिन तक निराहार रहना पड़ता या फिर कंद-मूल खा लेते। राणा तो फौलादी शरीर के थे परंतु रानी और दो सुकुमार बालकों ने तो महल से बाहर कभी कदम भी नहीं रखे थे। पथरीले रास्ते पर चल-चलकर उनके पैरों में छाले पड़ गये, मार्ग के कंटकों से अनेकों घाव हो गये, जिनमें असह्य पीड़ा हो रही थ
स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए उन्हें सब पीड़ाएँ स्वीकार थ

ऐसे विपदा के क्षणों में जंगली भीलों ने उनकी
सहायता की। उन्हीं भीलों में पुंगा नामक एक अ
स्वामिभक्त भील था। वह प्रताप के अंगरक्षक द
प्रमुख सदस्य था। राणाप्रताप की दृढ़-प्रतिज्ञा और दे
पर वह पूर्णतया न्योछावर था। उसके परिवार में केव
सदस्य थे - उसकी पत्नी और इकलौता पुत्र दुद्धा
यदा-कदा अपने परिवार का हालचाल जानने घर आ
करता था। तब वह बालक दुद्धा को राणाप्रताप की वीर
कारनामे सुनाता और मातृभूमि के प्रति उनके प्रगाढ़ प्रे
वर्णन करता, इससे दुद्धा का हृदय राणाप्रताप के प्रति
से अभिभूत हो उठता।

एक समय राणाप्रताप की प्राणरक्षा करते-करते

...और उस वीर बालक की आँखें सदा के लिए बंद हो गयीं। राणाप्रताप की आँखों से निर्झर फूट पड़े। उनके मुख से शब्द निकले : "धन्य है तुम्हारी देशभक्ति !"

मुगल सैनिकों के हाथों वीरगति को प्राप्त हो गया । राणाप्रताप अपने निकटतम स्वामिभक्त सेवक को खो बैठे । अपने विश्वसनीय, आज्ञाकारी सेवक की मृत्यु का समाचार पाकर प्रताप अत्यंत दुःखी हो गये, इस कारण उन्होंने उस दिन भोजन भी नहीं किया।

समय बीतता गया। पुंगा का पुत्र दुद्धा अब १२ वर्ष का हो चुका था । एक बार राणाप्रताप एक पहाड़ी इलाके में ठहरे हुए थे, वहाँ से दुद्धा की बस्ती नजदीक थी। बस्ती के भील बारी-बारी से प्रतिदिन राणाप्रताप के लिए भोजन पहुँचाया करते थे। आज दुद्धा की बारी थी परंतु उसके घर में अन्न का दाना भी नहीं था। दुद्धा की माँ पड़ोस से आटा माँगकर ले आयी और रोटियाँ बनाकर दुद्धा को देते हुए बोली : ''ले, यह पोटली राणा को दे आ।''

दुद्धा बड़ी प्रसन्नता से पहाड़ी पत्थरों-चट्टानों को कूदता-फाँदता तेजी-से दौड़ा जा रहा था। पहाड़ी के चारों ओर अकबर के सैनिक घेरा डाले हुए थे । उसे इस तरह दौड़ते देखकर एक सैनिक को कुछ शंका हुई।

उसने पूछा : ''क्यों रे ! इतनी जल्दी-जल्दी कहाँ भागा जा रहा है ?''

दुद्धा ने कोई उत्तर नहीं दिया पर अपनी चाल और तेज कर दी।

''अरे बहरे ! कौन है ? कहाँ जा रहा है ? तुझे सुनायी भी देता है या नहीं ? रुक जा !''

मुगल सैनिक उसे पकड़ने के लिए उसके पीछे भागने लगा । लेकिन वह भला उस चपल भील बालक को कैसे पकड़ पाता ? वह लड़खड़ाकर एक चट्टान पर धड़ाम-से गिर पड़ा, परंतु गिरते-गिरते उसने अपनी कटार से दुद्धा की कलाई अलग कर दी । खून का फव्वारा बह निकला, दुद्धा के वस्त्र रक्तरंजित हो गये परंतु वह देशभक्त बालक दौड़ता ही रहा । बस, उसे तो एक ही धुन थी - कैसे भी करके राणा तक रोटियाँ पहुँचानी हैं । रक्त बहुत बह चुका था । अब दुद्धा की आँखों के आगे अँधेरा छाने लगा । उसे लगने लगा कि अब उसके प्राण न बचेंगे । वह पूरी शक्ति से दौड़ने लगा और जंगल की झाड़ियों में गायब हो गया। मुगल सैनिक हक्का-बक्का-सा रह गया कि 'आखिर यह बालक कौन था ? कहाँ गया ?...'

दुद्धा तेजी-से अपने गंतव्य स्थान की ओर बढ़ा जा रहा था । अभी अपनी मंजिल के नजदीक ही पहुँचा था कि चकराकर गिर पड़ा । उसके एक हाथ से रक्त की धारा बह रही थी और दूसरे हाथ में रोटी की पोटली थी । वहीं से उसने राणा को पुकारा : ''राणाजी... !!'' आवाज सुनकर प्रताप गुफा से बाहर आये । दुद्धा के हाथ से रक्त बहता देखकर उन्होंने उस पर पट्टी बाँधी, परंतु रक्त अधिक बह चुका था । उसके मुँह पर पानी के छींटें मारे, एक बार उसने आँखें खोलीं और लड़खड़ाती आवाज में बोला : ''राणाजी ! ...ये... रोटियाँ... माँ ने... भिजवायी हैं । ...अब मैं... जा रहा हूँ । मेरी माँ.... अकेली है... अब आप ही उसके आधार हो... उसका ख्याल रखना ।'' और उस वीर बालक की आँखें सदा के लिए बंद हो गयीं । राणाप्रताप की आँखों से निर्झर फूट पड़े । उनके मुख से शब्द निकले : ''धन्य है तुम्हारी देशभक्ति !'' दुद्धा ने अद्‌भुत साहस एवं धैर्य का परिचय देकर अपने माता-पिता एवं राष्ट्र का भी नाम रोशन कर दिया । आज भी जब राणाप्रताप के देशप्रेम और शौर्य की गाथा गायी जाती है तो उन्हें विधर्मी शासकों से लोहा लेने में साथ देनेवाले इन वीरों को अवश्य याद किया जाता है।

प्रयत्न ही सिद्धि है

काम का ढेर देखकर कभी घबराना नहीं । मनुष्य काम करने के लिए ही जन्मा है । वह नहीं चाहेगा तो भी उसे काम करना ही पड़ेगा । जो कर्तव्य-कर्म करने में उत्साही है, वही दूसरों के लिए उपयोगी होने का सुख भोग सकता है।

उद्यम में लक्ष्मी का वास है और आलस्य में अलक्ष्मी का । उद्यमी को देखकर कमनसीबी डरके भाग जाती है । उद्यम करने पर भी कभी ध्येय सिद्ध न हो तो भी उदास न हों, क्योंकि पुरुषार्थ अथवा प्रयत्न स्वयं ही एक बड़ी सिद्धि है।

दुःख से कभी डरें नहीं, बल्कि उसे देखकर उसके सामने हँसें । आपको हँसते देखकर दुःख स्वयं ही डरके भाग जायेगा । मानव को दुःख का शिकार नहीं होना चाहिए, न ही सुख में फूलना चाहिए।

सुख सपना दुःख बुलबुला, दोनों हैं मेहमान ।
दोनों बीतन दीजिये, जो भेजें भगवान ॥

श्री जगदीशचंद्र बसु

त्याग और साहस

प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री जगदीशचंद्र बसु कलकत्ता में विज्ञान का गहन अध्ययन तथा शोधकार्य कर रहे थे, साथ ही एक महाविद्यालय में पढ़ाते भी थे। उसी महाविद्यालय में कुछ अंग्रेज प्राध्यापक भी विज्ञान पढ़ाते थे। उनका पद तथा शैक्षणिक योग्यता श्री बसु के समान होते हुए भी उन्हें श्री बसु से अधिक वेतन दिया जाता था, क्योंकि वे अंग्रेज थे।

अन्याय करना पाप है किंतु अन्याय सहना दुगना पाप है - महापुरुषों के इस सिद्धांत को जाननेवाले श्री बसु के लिए यह अन्याय असहनीय था। उन्होंने सरकार को इस विषय में पत्र लिखा परंतु सरकार ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। श्री बसु ने इस अन्याय के विरोध में प्रति मास के वेतन का धनादेश (चेक) यह कहकर लौटाना आरम्भ किया कि जब तक उन्हें अंग्रेज प्राध्यापकों के समान वेतन नहीं दिया जायेगा, वे वेतन स्वीकार नहीं करेंगे।

इससे घर में पैसे की तंगी होने लगी। अध्ययन और शोधकार्य बिना धन के हो नहीं सकते थे। श्री बसु चिंतित हुए और इस विषय में उन्होंने अपनी पत्नी से चर्चा की। इस पर उनकी पत्नी श्रीमती अबला बसु ने उन्हें अपने सब आभूषण दे दिये और कहा : ''इनसे कुछ काम चल जायेगा। इसके अलावा, अगर हम लोग कलकत्ता के महँगे मकान को छोड़कर हुगली नदी के पार चंदन नगर में सस्ते मकान में रहें तो खर्च में काफी कमी आ जायेगी।''

श्री बसु बोले : ''ठीक है, लेकिन हुगली को पार करके प्रतिदिन कलकत्ता कैसे पहुँचूँगा ?'' श्रीमती बसु ने सुझाव दिया : ''हम लोग अपनी पुरानी नाव की मरम्मत करा लेते हैं। उसमें आप प्रतिदिन आया-जाया करें।'' इस पर श्री बसु ने कहा : ''मैं यदि प्रतिदिन नाव खेकर आऊँगा-जाऊँगा तो इतना थक जाऊँगा कि फिर न छात्रों को पढ़ा सकूँगा, न शोधकार्य कर सकूँगा।'' परंतु श्रीमती ब
माननेवाली नहीं थीं। वे बोलीं : ''ठीक है, आप ना
खेना। मैं प्रतिदिन नाव खेकर आपको लाया और ले
करूँगी।''

श्रीमती बसु हार माननेवाली नहीं थीं। वे बोलीं : ''मैं प्रतिदिन नाव खेकर आपको लाया और ले जाया करूँगी।''

उस साहसी, दृढ़निश्चयी महिला ने ऐसा ही वि
इसी कारण श्री जगदीशचंद्र बसु अपना अध्ययन
शोधकार्य जारी रख सके और एक विश्वविख्यात वैज्ञा
बन सके। अंततः अंग्रेज सरकार झुकी और श्री बसु
अंग्रेज प्राध्यापकों के समान वेतन मिलने लगा।

संत श्री भोले बाबा ने कार्य-साफल्य की कुंजी ब
हुए कहा ही है :

जो जो करे तू कार्य कर, सब शांत होकर धैर्य से।
उत्साह से अनुराग से, मन शुद्ध से बल-वीर्य से॥

पति-पत्नी में आपस में कितना सामंजस्य, एक-दू
के लिए कितना त्याग, सहयोग होना चाहिए तथा जीवन
हर समस्या से साथ मिलकर जूझने की कैसी भावना ह
चाहिए इसका एक उत्तम उदाहरण पेश किया श्रीमती
ने। उनका नाम भले अबला था किंतु उन्होंने अ
आचरण से यह सिद्ध कर दिखाया कि किसी भी स्त्री
अपने-आपको अबला नहीं मानना चाहिए, अपितु धै
हर कठिनाई का सामना करके यह सिद्ध कर दिख
चाहिए कि वह सबला है, समर्थ है।

विश्वनियंता आत्मा-परमात्मा सबका रक्षक-पो
है, सर्वसमर्थ है। ॐ... ॐ... दुर्बलता और जुल्म का त
दुर्बल विचारों और व्यर्थ की सहिष्णुता का त्याग क
सबल, सुयोग्य बनें और अपने सहज-सुलभ आत्
परमात्मा के बल को पायें।

॥ संत मिलन को जाइये ॥

दुर्लभो मानुषो देहो देहीनां क्षणभंगुरः ।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम् ॥

'मनुष्य-देह मिलना दुर्लभ है। वह मिल जाय फिर भी वह क्षणभंगुर है। ऐसी क्षणभंगुर मनुष्य-देह में भी भगवान के प्रिय संतजनों का दर्शन तो उससे भी अधिक दुर्लभ है।'

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न वै । मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥

'हे नारद! कभी मैं वैकुण्ठ में भी नहीं रहता, योगियों के हृदय का भी उल्लंघन कर जाता हूँ, परंतु जहाँ मेरे प्रेमी भक्त मेरे गुणों का गान करते हैं वहाँ मैं अवश्य रहता हूँ।'

कबीर सोई दिन भला जा दिन साधु मिलाय ।
अंक भरै भरि भेंटिये पाप शरीरां जाय ॥१॥
कबीर दरशन साधु के बड़े भाग दरशाय ।
जो होवै सूली सजा काटै ई टरी जाय ॥२॥
दरशन कीजै साधु का दिन में कई कई बार ।
आसोजा का मेह ज्यों बहुत करै उपकार ॥३॥
कई बार नहीं करि सकै दोय बखत करि लेय ।
कबीर साधू दरस ते काल दगा नहीं देय ॥४॥
दोय बखत नहीं करि सकै दिन में करु इक बार ।
कबीर साधु दरस ते उतरे भौ जल पार ॥५॥
दूजै दिन नहीं करि सकै तीजै दिन करु जाय ।
कबीर साधू दरस ते मोक्ष मुक्ति फल पाय ॥६॥
तीजै चौथे नहीं करै सातैं दिन करु जाय ।
या में विलंब न कीजिये कहै कबीर समुझाय ॥७॥
सातैं दिन नहीं करि सकै पाख पाख करि लेय ।
कहै कबीर सो भक्तजन जनम सुफल करि लेय ॥८॥
पाख पाख नहीं करि सकै मास मास करु जाय ।
ता में देर न लाइये कहै कबीर समुझाय ॥९॥
मात पिता सुत इस्तरी आलस बंधु कानि ।
साधु दरस को जब चलै ये अटकावै खानि ॥१०॥
इन अटकाया ना रहै साधू दरस को जाय ।
कबीर सोई संतजन मोक्ष मुक्ति फल पाय ॥११॥
साधु चलत रो दीजिये कीजै अति सनमान ।
कहै कबीर कछु भेंट धरुँ अपने बित अनुमान ॥१२॥
तरुवर सरोवर संतजन चौथा बरसे मेह ।
परमारथ के कारणे चारों धरिया देह ॥१३॥
संत मिलन को जाइये तजी मोह माया अभिमान।
ज्यों ज्यों पग आगे धरे कोटि यज्ञ समान ॥१४॥
तुलसी इस संसार में भाँति भाँति के लोग ।
हिलिये मिलिये प्रेम सों नदी नाव संयोग ॥१५॥
चल स्वरूप जोबन सुचल चल वैभव चल देह ।
चलाचली के वक्त में भलाभली कर लेह ॥१६॥
सुखी सुखी हम सब कहें सुखमय जानत नाँही ।
सुख स्वरूप आतम अमर जो जाने सुख पाँहि ॥१७॥
सुमिरन ऐसा कीजिये खरे निशाने चोट ।
मन ईश्वर में लीन हो हले न जिह्वा होठ ॥१८॥
दुनिया कहे मैं दुरंगी पल में पलटी जाऊँ ।
सुख में जो सोये रहे वा को दुःखी बनाऊँ ॥१९॥
माला श्वासोच्छ्वास की भगत जगत के बीच ।
जो फेरे सो गुरुमुखी ना फेरे सो नीच ॥२०॥
अरब खरब लों धन मिले उदय अस्त लों राज ।
तुलसी हरि के भजन बिन सबे नरक को साज ॥२१॥
साधु सेव जा घर नहीं सतगुरु पूजा नाँही ।
सो घर मरघट जानिये भूत बसै तेहि माँही ॥२२॥
निराकार निज रूप है प्रेम प्रीति सों सेव ।
जो चाहे आकार को साधू परतछ देव ॥२३॥
साधू आवत देखि के चरणौ लागौ धाय ।
क्या जानौ इस भेष में हरि आपै मिल जाय ॥२४॥
साधू आवत देख करि हसि हमारी देह ।
माथा का ग्रह उतरा नैनन बढ़ा सनेह ॥२५॥

शिवजी ने रावण को बताया तपन मिटाने का उपाय

(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

रावण की प्रेयसी का सिर यज्ञ में होम दिया गया । रावण भीतर-ही-भीतर क्रोधाग्नि से जलने लगा और सामने यज्ञ की अग्नि भी धधक रही थी ।

एक बार मकराक्ष दैत्य ने रावण को पकड़ लिया और उसकी प्रेयसी के सामने ही उसकी बुरी हालत कर दी। अपनी प्रेयसी के सामने अपमान हो जाय, गाली सुननी पड़े, कोई जूते मार दे तो स्त्री-भगत को मार की इतनी पीड़ा नहीं होती, जितनी स्त्री के सामने अपमान की होती है।

मकराक्ष ने अपना निर्णय सुनाया : ''रावण ! पहले हम तेरा सिर यज्ञ में होम देंगे और बाद में तेरी प्रेयसी का भी।'' रावण ने कहा : ''तू मेरी बलि भले दे दे। परंतु एक बात मान, मैं जरा पाठ कर लूँ अपनी सद्गति के लिए, मुझे मेरा पाठ पूरा करने दे।''

राक्षसों में, बुरे-से-बुरे आदमी में भी कुछ तो दया रहती है। रावण जरा दैन्यभाव से बोला तो मकराक्ष के अहं का पोषण हो गया और उसे दया आ गयी। मकराक्ष ने कहा : ''अच्छा, कोई बात नहीं किंतु तब तक हम ऐसे ही नहीं बैठेंगे। यह तेरी सुंदर प्रेयसी है, मंदोदरी के होते हुए भी इसको रखा है न तूने ! तेरे सामने इसकी बलि देंगे। तेरी बलि से तुझे जो पीड़ा होगी, उससे भी ज्यादा मानसिक पीड़ा इसकी बलि से होगी तुझे।''

आग की लपटें उठ रही थीं और रावण देख रहा था। मकराक्ष रावण की प्रेयसी की चोटी पकड़कर उसे घसीटते हुए ले गया और रावण से बोला : ''चल, मूँड़ी कटते देख ले अपनी प्यारी की।'' रावण की प्रेयसी का सिर यज्ञ में होम दिया गया। रावण को उसके मर जाने का दुःख इतना नहीं हुआ जितना क्रोध हुआ, क्योंकि कामना अगर पूर्ण नहीं होती है तो क्रोध उत्पन्न होता है। रावण भीतर-ही-भीतर क्रोधाग्नि से जलने लगा और सामने यज्ञ की अग्नि भी धधक रही थी।

रावण में चतुराई थी, शिवजी का भक्त जो था ! उसने काफी लम्बे समय तक पाठ चालू रखा। उतने समय में उसकी सेना के असुर आ गये और उन्होंने मकराक्ष को हरा दिया। रावण निर्बंध हो गया। प्रार्थना और पाठ कितने-कितने खतरों से बचा देता है ! यज्ञ के ताप और आंतरिक क्रोधा के कारण रावण के शरीर में तपन पैदा हुई। बहु इलाज करने के बाद भी उसकी तपन शांत न हुई। तब उसने भगवान शिव की आराधना की शिवजी प्रकट हुए और उन्होंने रावण को उपा बताया, जो इस प्रकार है :

अगर शरीर तपने लग जाय या आँखें जल लगें अथवा क्रोध को पी जाने से तपन हो रही हो त शुद्ध वायुमंडल में बैठ जाओ और जीभ को लम्बा में मोड़कर कौए की चोंच की तरह बाहर निकालो फिर उसके द्वारा खूब वायु अंदर खींचकर घूँ भरके पीयो। वायु को थोड़ी देर अंदर ही रोकक नाक के द्वारा बाहर निकाल दो। इसको 'शीतल प्राणायाम' बोलते हैं (विस्तृत जानकारी अग पृष्ठ पर)। इससे पित्तादि का शमन हो जाता है।

शरीर में कितनी भी गर्मी पैदा हुई हो अत्यधिक मासिक-स्राव होता हो, रक्तस्राव बं नहीं होता हो, दवाइयाँ-गोलियाँ-इंजेक्शन स निष्प्रभावी साबित हो चुके हों तो भी कोई फि नहीं, यह प्राणायाम करो तो एकदम जादू-स प्रभाव दिखायी देगा। भूख-प्यास सताती हो औ आपको भोजन-पानी नहीं लेना हो तो इ प्राणायाम का अभ्यास करके आप वायु पीकर ज सकते हैं।

इन गर्मियों में शीतली प्राणायाम का अभ्या करके ऋषियों ने कृपा करके जो ज्ञान हमारे लि शास्त्रों में सँजो रखा है, उसका लाभ उठायें।

(गतांक से आगे)

गर्मियों में करने योग्य प्राणायामों में दो महत्त्वपूर्ण प्रकार हैं : शीतली और शीतकारी । इनके अभ्यास से शरीर में शीतलता का संचार होता है।

शीतली प्राणायाम

विधि : पद्मासन या सुखासन में बैठकर दोनों हाथ घुटनों पर ज्ञानमुद्रा में रखें। नेत्रों को कोमलता से बंद करें। मुँह खोलकर होंठों को अंग्रेजी वर्ण 'ओ' (O) के आकार में लायें व जिह्वा को होंठों से बाहर निकालें। अब पेड़ का नया कोमल पत्ता खुलने से पहले जिस प्रकार मुड़ा हुआ होता है, उस प्रकार जिह्वा को लम्बाई में मोड़ दें और उसमें से श्वास अंदर लें, जैसे आप किसी नली से वायु पी रहे हों। श्वास मुड़ी हुई गीली जिह्वा में से गुजरकर आर्द्र व ठंडा हो जाता है। फेफड़ों को वायु से पूर्णतया भर लेने के बाद जिह्वा को सामान्य स्थिति में लाकर मुँह बंद कर लें। ठोड़ी को कंठकूप पर दबाकर जालंधर बंध करें। मूलबंध के साथ श्वास को ५ से १० सेकंड तक रोके रखें। बाद में दोनों नथुनों से धीरे-धीरे श्वास छोड़ दें। यह एक शीतली प्राणायाम हुआ। इस प्रकार तीन प्राणायाम करें। धीरे-धीरे इसकी आवृत्तियाँ ५-७ तक बढ़ा सकते हैं।
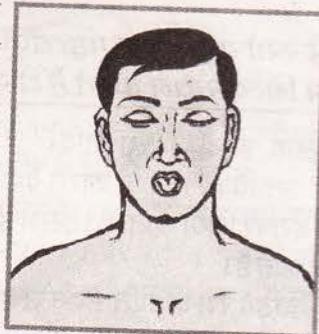
लाभ : शीतली प्राणायाम आनंद व आह्लाददायक है। यह शरीर को शीतल व मन को शांत करता है। नेत्रों तथा कानों को सुख पहुँचाता है। अतिरिक्त गर्मी व पित्तदोष का शमन करता है। भूख को नियंत्रित करता है एवं प्यास बुझाता है। यकृत व प्लीहा को सक्रिय कर पाचनशक्ति बढ़ाता है। प्लीहावृद्धि, पित्तविकार, अति क्षुधा, ज्वर व विष का नाश करता है। उच्च रक्तचाप व स्त्रियों में होनेवाले अत्यधिक मासिक-स्राव में यह प्राणायाम बहुत ही लाभदायी है। अत्यधिक मासिक-स्राव में जब सभी औषधियाँ और उपचार नन्हे साबित होते हैं, तब यह प्राणायाम उसे सामान्य करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

सावधानियाँ : शीतली प्राणायाम सर्दियों में नहीं करना चाहिए। निम्न रक्तचाप में तथा दमा, खाँसी आदि कफजन्य विकारों में यह प्राणायाम निषिद्ध है।

इसे अधिक न करें, अन्यथा मंदाग्नि होगी। बिनजरूरी करने से भूख कम हो जायेगी। पित्त और ताप मिटाने के लिए भी ५-७ बार ही करें।

शीतकारी (सीत्कार) प्राणायाम

विधि : किसी सुगम आसन में बैठ जायें। नेत्रों को बंद रखें। दाँतों की पंक्तियों को एक-दूसरे पर रखें। जिह्वा को मुँह के भीतर पीछे की ओर इस प्रकार से मोड़ें कि उसके अग्रभाग का स्पर्श तालु से हो। होंठों को खोलकर अधिक-से-अधिक फैलायें। अब मुँह के द्वारा 'सी' जैसा शब्दोच्चार करते हुए गहरा श्वास लें। पूर्ण रूप से श्वास लेने के बाद जिह्वा तथा दाँतों को सामान्य स्थिति में रखकर मुँह बंद करें। श्वास को ५ से १० सेकंड तक अंदर रोके रखें। बाद में दोनों नथुनों से धीरे-धीरे श्वास छोड़ दें। इस प्रकार तीन प्राणायाम करें। धीरे-धीरे इसकी आवृत्तियाँ ५-७ तक बढ़ा सकते हैं।

लाभ : शीतली प्राणायाम के सब लाभ इस प्राणायाम से भी प्राप्त होते हैं। इस प्राणायाम से बल, तेज, सौंदर्य व सत्त्वगुण की वृद्धि होती है। यह प्राणायाम करनेवाला व्यक्ति निद्रा के वशीभूत नहीं होता और न ही उसे आलस्य आता है। उसके शरीर में सदैव उत्साह व स्फूर्ति बनी रहती है।

सावधानियाँ : शीतली प्राणायाम के समान।

(क्रमशः)

शीघ्र लाभकारी प्राणायाम-चिकित्सा

भोजन : एक नित्य यज्ञकर्म

आयुर्वेदोक्त जीवनचर्या में रसों का स्थान महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि जिन आहार-द्रव्यों का हम नित्य सेवन करते हैं वे रसप्रधान हैं।

(गतांक से आगे)

(४) **तीखा रस** : यह पचने में हलका, रुक्ष, उष्ण व तीक्ष्ण होने के कारण वात तथा पित्त को बढ़ानेवाला व कफशामक है। यह मुखशुद्धिकर, रुचि व जठराग्नि वर्धक है। यह इन्द्रियों को निर्मल बनाता है, उनकी कार्यक्षमता बढ़ाता है तथा पेट के कृमियों का नाश करता है। यह मेद तथा शुक्रधातु का नाश करनेवाला, तमोगुण बढ़ानेवाला व उत्साहहीन बनानेवाला है। यह अपने रुक्ष, उष्ण, तीक्ष्ण गुणों से रक्त की गुठलियों को पिघलाता है। रक्तवाहिनियों में से अवरोधों को हटाकर रक्तसंचरण का मार्ग खुला कर देता है। अतः तीखा रस हृदयरोग में लाभदायी है।

तीखे रसयुक्त पदार्थ : मिर्च, काली मिर्च, हींग, पीपर, सोंठ, अदरक, लहसुन आदि।

तीखे पदार्थों के अति सेवन से हानि : उष्ण-तीक्ष्ण होने के कारण तीखा रस पित्त को बढ़ाता है, जिससे सर्वांगदाह, भ्रम, घबराहट, ग्लानि, कंठ, तालु व होंठों में शुष्कता, अधिक प्यास लगना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। वायु की वृद्धि होने से शरीर में पीड़ा होती है। उपरोक्त लक्षण उत्पन्न होने पर दूध, घी आदि मधुर पदार्थों का सेवन करना चाहिए। तीखे पदार्थ वातवर्धक व शुक्रनाशक होते हैं, परंतु सोंठ, पीपर व लहसुन उत्तम वातनाशक व शुक्रवर्धक हैं।

(५) **कड़वा रस** : यह पचने में हलका, रुक्ष, शीत गुणयुक्त, कफ व पित्त को सुखानेवाला तथा वातवर्धक है। कड़वा रस यकृत को शुद्ध करता है व उसकी कार्यक्षमता बढ़ाकर जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। उत्तम आमपाचक होने से ज्वर का नाश करता है। विष, कृमि, कुष्ठ (त्वचाविकार) को नष्ट करता है। अतिरिक्त कफ, मांस व मेद को हटाता है, अतः मोटापा, मधुमेह, संधिवात में लाभदायी है। कड़वे पदार्थ मातृस्तन्य (माता का दूध) की विकृतियों को दूर करते हैं, कंठ, त्वचा व व्रणों की शुद्धि करते हैं।

कड़वे रसयुक्त पदार्थ : मेथी, नीम, चिरायता, गिलोय, हल्दी, करेला आदि।

अरुचिकर होने के कारण कड़वे पदार्थों का सेवन न के बराबर किया जाता है। इससे हम इसके लाभों से वंचि रह जाते हैं।

कड़वे रस के अति सेवन से हानि : कड़वे पदार्थ रुक्ष वातवर्धक होने के कारण धातुओं का शोषण कर शरीर क कृश व दुर्बल बनाते हैं। इनके अति सेवन से उत्साहहीनत ग्लानि, भ्रम, मूर्च्छा, शरीर में पीड़ा, शिरःशूल आदि लक्ष उत्पन्न होते हैं। इन्हें दूर करने के लिए मधुर व स्निग पदार्थों, जैसे - दूध, घी आदि का सेवन करना चाहिए।

कड़वे पदार्थ वातवर्धक व शुक्रनाशक होते हैं, पर गिलोय कड़वी होने पर भी वातशामक व वृष्य (बल वीर्यवर्धक) है।

(६) **कसैला रस** : यह रुक्ष, शीत, कफ व पित्तशाम तथा वातवर्धक है। यह रक्त को शुद्ध करता है। अपन स्वाभाविक संकोचन-शक्ति के द्वारा यह स्रोतों क संकोचन व व्रणों को साफ करता है। यह संग्राही होने अतिसार में लाभदायी है परंतु नये ज्वर में इसका उपयो नहीं करना चाहिए।

कसैले रसयुक्त पदार्थ : हरड़, कच्चा बेलफल कमल आदि।

कसैले पदार्थों के अति सेवन से हानि : इनके अति सेवन से स्रोतों का संकोचन होने के कारण मुँह सूख जाना, हृदय पर भार जैसा लगना, घबराहट, मल-मूत्र का अवरोध होकर पेट में वायु भर जाना, अंगों में जकड़न व वेदना आदि वातविकार उत्पन्न होते हैं।

हरड़ कसैली होने पर भी उष्ण व मल-निस्सारक होने के कारण उपरोक्त व्याधिजन्य लक्षण उत्पन्न नहीं करती।

आयुर्वेदोक्त जीवनचर्या में रसों का स्थान महत्त्वपूर्ण है क्योंकि जिन आहार-द्रव्यों का हम नित्य सेवन करते हैं वे रसप्रधान हैं। इन द्रव्यों के गुण-अवगुणों का ज्ञान स्वास्थ्य के रक्षण और रोगों के निवारण के लिए परम उपयोगी है।
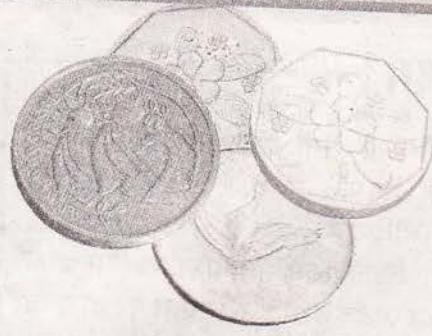
ग्रीष्म ऋतु में स्वास्थ्य व बल की सुरक्षा

ग्रीष्म ऋतु का आगमन होते ही सूर्य अपनी तीव्र किरणों द्वारा शरीर के स्निग्ध व जलीय अंश का शोषण करने लगता है। सूर्य की किरणें ज्यों-ज्यों तीव्र होती जाती हैं, त्यों-त्यों कफ का नाश व वायु की वृद्धि होती है। परिणामतः इस ऋतु में शरीर में रुक्षता व दुर्बलता उत्पन्न हो जाती है।

इस दुर्बलता को दूर करने के लिए एक बहुत ही सरल व प्रभावशाली उपाय है : सुवर्ण, चाँदी, लौह व पीतल से सिद्ध जल का प्रयोग। इन धातुओं का शरीर पर भिन्न-भिन्न प्रभाव पड़ता है। सुवर्ण प्रज्ञा, स्मृति, वीर्य, कांति और ओज को बढ़ानेवाला, हृदय, मस्तिष्क व यकृत को बल देनेवाला व मन को प्रसन्न करनेवाला है। चाँदी शीत, वातशामक, बृंहण (पुष्टिकारक), वयःस्थापक (वृद्धावस्था को दूर रखनेवाली) व बलवर्धक है। लौह रक्तवर्धक, रक्तशुद्धिकर, धातुदौर्बल्य दूर करनेवाला व पुष्टिदायक है। पीतल विष व कृमिनाशक है। ये सभी धातुएँ रसायन अर्थात् शरीरस्थ सप्तधातुओं की वृद्धि करनेवाली व शरीर को बलवान बनानेवाली हैं।

इन धातुओं के २५ से ५० ग्राम के टुकड़े अथवा इनसे बनी कोई भी वस्तुएँ लें। इस बात का ध्यान रखें कि धातुएँ शुद्ध हों, उनमें अन्य धातुओं की मिलावट न हो। सामान्यतः चारों को मिलाकर अथवा दो-तीन जितनी भी उपलब्ध हों उतनी धातुओं के टुकड़े एक लीटर पानी में डालकर धीमी आँच पर उबालें। आधा पानी शेष रहने पर बर्तन नीचे उतारकर उसे ठंडा करें। यह पानी सुबह खाली पेट पीने से बहुत सारे रोग नष्ट हो जाते हैं व रोगप्रतिकारक शक्ति बढ़ती है। इस प्रयोग से शारीरिक बल में चमत्कारिक वृद्धि होती है। पानी जितना अधिक उबलेगा उतना अधिक बलप्रद होगा व धातुओं के गुण उतनी अधिक मात्रा में पानी में उतरेंगे।

ग्रीष्म ऋतु में उत्पन्न होनेवाली दूसरी समस्या है मंदाग्नि की। अधिक आयुवाले तथा वृद्ध व्यक्तियों का पाचनतंत्र इन दिनों में बिगड़ जाता है। पाचनशक्ति बढ़ाने के लिए एक गिलास पानी में एक आँवले का रस व आधा चम्मच अदरक का रस मिलाकर उसे धीमी आँच पर उबालें। पानी आधा शेष रहने पर ठंडा कर उसमें थोड़ा-सा शहद व हलका-सा सेंधा नमक मिला दें और धीरे-धीरे चुसकी लेकर पीयें। इससे मंदाग्नि दूर हो जायेगी व भूख खुलकर लगेगी। स्फूर्ति व ताजगी का अनुभव होगा। अगर ताजा आँवला व अदरक न मिलें तो २ ग्राम आँवले के चूर्ण और १ ग्राम सोंठ के चूर्ण का भी उपयोग कर सकते हैं।

ग्रीष्म ऋतु में न अधिक भोजन करना चाहिए न अधिक उपवास। इन दिनों में दूध, घी, चावल की खीर, सत्तू, किशमिश, फलों का रस आदि पचने में सुलभ, स्निग्ध, शीत, मधुर व द्रवरूप पदार्थों का सेवन करना चाहिए। सत्तू को शीतल जल में घी व मिश्री मिलाकर इस प्रकार घोलें कि मिश्रण न अधिक पतला हो न अधिक गाढ़ा। इसके सेवन से स्वाभाविक ही बल की रक्षा होती है।

इन दिनों में प्यास बुझाने के लिए प्रशीतक (फ्रिज) के पानी का उपयोग कदापि न करें। गर्मियों में बाह्य वातावरण का तापमान होता है ३०° C से ४०° C तक व प्रशीतक के पानी का तापमान होता है ३° C से ४° C। दो तापमानों के बीच का यह अंतर शरीर के लिए हानिकारक है। अति शीतल जल के सेवन से जठराग्नि भी मंद हो जाती है। अपने देश में गर्मियों में गुड़ का पानी पीने की पुरानी परंपरा अभी भी कई जगहों पर प्रचलित है। इसके पीछे वैज्ञानिक रहस्य छिपा हुआ है। साधारण पानी पीने से शरीर के केवल जलीय अंश की ही पूर्ति होती है, परंतु गुड़ का पानी पीने से जलीय अंश के साथ स्निग्ध अंश की भी पूर्ति हो जाती है, साथ में शरीर को पोषण भी मिलता है। कच्चे आम व गुड़ से बना पना, इमली, कोकम, नींबू आदि का शरबत, नारियल का पानी इत्यादि का उपयोग कर गर्मियों में अपने स्वास्थ्य एवं बल की रक्षा करें।

गुरुकृपा ने की सुनामी के कहर से रक्षा

मैं अंदमान-निकोबार में भारतीय नौ-सेना के मास्टर चीफ पी.टी ऑफीसर के पद पर नियुक्त हूँ। हम पति-पत्नी, मेरे दोनों बेटे व दोन बेटियाँ - सभी पूज्य बापूजी से दीक्षित हैं।

२६ दिसम्बर २००४ को अंदमान-निकोबार में सुनामी लहरों (समुद्र की प्रलयकारी लहरें) व भूकम्प का भयंकर तांडव हुआ। उस समय मेरे दो बच्चे मंत्रजप कर रहे थे। थोड़े ही समय में समुद्र का पानी इतनी तेजी-से घर में आय कि लगभग ५-६ फुट तक ऊपर चढ़ गया। घर ग्राउंड फ्लोर पर तथा समुद्री तट के नजदीक होने की वजह से पानी घर में तेजी-से घुसा। गुरुकृपा से मैं परिवारसहित ऊँची जगह पर पहुँच गया। घर का सारा सामान तहस-नहस हो गया पर पूजावाले कमरे में रखा आसन, माला व पूजा की सामग्री उसी कमरे में सुरक्षित मिल गयी। हमारा पूरा परिवार सुरक्षित बच गया।

– श्री घनश्यामदास

गाँव – डेरोली अहीर, जि. महेन्द्रगढ़ (हरि.)।

झूठे केस से निर्दोष रिहाई

मैं केन्द्र सरकार की एक कम्पनी में सिविल इंजीनियर हूँ। १९९९ में मेरी नियुक्ति फरीदाबाद में हुई थी। मेरी पत्नी प्रतिदिन टी.वी. द्वारा बापूजी के सत्संग का लाभ लेती थी परंतु मैं उसका बहुत विरोध करता था। कई बार हम दोनों में बहुत झगड़ा हो जाता था क्योंकि मैं चैनल बदल देता था। मार्च २००० में हमें मकान बदलना पड़ा और किराये पर जो मकान मिला वह बापूजी के पूनम व्रतधारी साधक का था। स्थान का अपना प्रभाव होता है। इस मकान में आने के बाद मैं भी टी.वी. द्वारा सत्संग-लाभ लेने लगा। 'श्रीआसारामायण' भी पढ़ने लगा। उन्हीं दिनों दिल्ली में मेरा छोटा भाई नौकरी छोड़कर गलत संग में फँस गया। मुझे खबर मिली कि उसे एक प्रापर्टी डीलर के अपहरण-केस में पकड़ लिया गया है। मुझे विश्वास था कि मेरा भाई इतना गिरा हुआ नहीं है। उसी समय मुझे 'श्रीआसारामायण' की निम्न पंक्तियाँ याद आयीं।

एक दिना एक माई आई, बोली हे भगवन् सुखदाई ॥
पड़े पुत्र दुःख मुझे झेलने, खून केस दो बेटे जेल में।
बोले आसु सुख पावेंगे, निर्दोष छूट जल्दी आवेंगे।

मैंने बापूजी से मन-ही-मन कहा कि 'मेरा भाई भी निर्दोष है।' मैं दिल्ली जाने को रवाना हुआ। फरीदाबाद से दिल्ली पहुँचने में करीब डेढ़ घंटा लगा और आश्चर्य! घर पहुँचकर मैंने देखा कि मेरा भाई पुलिस हिरासत से छूटकर घर आ गया था। उसने बताया कि ''थोड़ी देर पहले जो इंस्पेक्टर मेरी बात सुनने को तैयार नहीं थे, वे स्वयं मेरे पास आये और बोले : 'तुम घर जाओ। तुम्हारा इसमें हाथ हो नहीं सकता।''' कितना ख्याल रखते हैं बापूजी अपने साधकों का!

बेटे घर आये माँ भागी, आसुमल के पाँवों लागी ॥
आसुमल का पुष्ट हुआ, अलौकिक प्रभाव।...

'श्रीआसारामायण' की ये पंक्तियाँ कितनी सत्य हैं! बापूजी का ध्यान करते ही परेशानियाँ गायब हो जाती हैं। अब वह भाई भी सही राह पर आ गया है। हमने दीक्षा भी ले ली है।

"थोड़ी देर पहले जो इंस्पेक्टर मेरी बात सुनने को तैयार नहीं थे, वे स्वयं मेरे पास आये और बोले : 'तुम घर जाओ। तुम्हारा इसमें हाथ हो नहीं सकता।'"

– श्री आर.पी. सिंह

८/९, कृष्णा रेसीडेन्सी, राजनगर, गाजियाबाद (उ. प्र.)।

'ऋषि प्रसाद' प्रतिनिधि

अंकलेश्वर : २ व ३ अप्रैल को अंकलेश्वर (गुज.) में सत्संग-कार्यक्रम संपन्न हुआ। दो दिन के इस कार्यक्रम में यहाँ के श्रोताओं-भक्तों का संत-सान्निध्य व सत्संग के प्रति अभूतपूर्व प्रेम उजागर हुआ। पंडाल खचाखच भरा हुआ था, मानों अपार भक्त-सरिताओं का संगम इस सत्संग-सागर में हुआ हो।

यहाँ पूज्य बापूजी से मंत्रदीक्षा प्राप्त कर हजारों भक्त धनभागी हुए। मंत्रदीक्षा की महिमा बताते हुए पूज्य बापूजी ने कहा :

''सद्गुरु द्वारा दिया जानेवाला मंत्र 'चैतन्य मंत्र' कहलाता है। जब तक साधक का परम कल्याण नहीं होता तब तक गुरुमंत्र और सद्गुरु की कृपा उसका पीछा नहीं छोड़ते। दीक्षा लेनेवाला साधक अगर श्रद्धा, एकाग्रता, संयम और तत्परता से गुरुप्रदत्त साधन में लगकर साधना को बढ़ाता है तो वह सहज ही भगवद्गीता के समत्व योग, ध्यानयोग, ज्ञानयोग और कर्मयोग का अधिकारी बन जाता है।''

अमदावाद (गुज.) : अप्रैल माह की शुरुआत से ही देश के विभिन्न भागों में ग्रीष्म ऋतु की खबरें देनेवाली प्राकृतिक तपन शुरू हो गयी थी, फिर भी ७ से १० अप्रैल तक अमदावाद आश्रम में कुछ और ही नजारा रहा। वह नजारा था बाह्य शीतलता और आंतरिक शांति, सौम्यता, आनंद एवं प्रसन्नता का अनुभव कर रहे अनगिनत विद्यार्थियों और भक्तों का। अवसर था पूज्य बापूजी के सान्निध्य में आयोजित विद्यार्थी उत्थान शिविर (७ व ८ अप्रैल) और चेटीचंड ध्यान योग शिविर (९ व १० अप्रैल) का। नदी-तट पर बनाये गये विशाल सत्संग-पंडाल में बाह्य वातावरण को शीतल बना रखा था पुण्यसलिला साबरमती ने तो विद्यार्थियों और भक्तों के अंतर्मन को शीतल बना रहे थे शांतिदाता, आनंददाता स्वयं पूज्य बापूजी।

विद्यार्थी उत्थान शिविर : पूज्यश्री की तपस्या एवं लोक-मांगल्य की पावन स्थली... साबरमती का पावन, विशाल तीर... ब्राह्ममुहूर्त की अमृतवेला... गूगल धूप से महकता सात्त्विक वातावरण... 'हरि ॐ' की मधुर धुन पर मानसिक जप करते हुए ध्यानस्थ हो पुण्यवर्धन करते हजारों विद्यार्थी... उनकी जप-ध्यान में तन्मय शांतमुद्रा देखकर बड़ा सुखद आश्चर्य हो रहा था कि इस बाल वय में, चंचलता की स्वाभाविक उम्र में ऐसा भी हो सकता है!

चेटीचंड ध्यान योग शिविर : चेटीचंड महोत्सव अर्थात् झुलेलाल अवतरण-दिवस का संदेश देते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''यह उत्सव मनाने का उद्देश्य मानव-जाति को यह संदेश देना है कि दुष्ट शक्तियों से जूझने के लिए सज्जनों को संगठित होकर उपाय खोजना चाहिए और बाहर के उपाय की अपेक्षा उडेरोलाल के पास जाना चाहिए (अंतरात्मा में गोता लगाना चाहिए)। उडेरोलाल अर्थात् उदयचंद। उस परमात्मा के कितने भी नाम रखो, कम हैं। उदयचंद, जो जप-प्रार्थना करके विश्रांति पाओ तो उदय हो जाय वह ईश्वर है उदयचंद... मन बाहर भागे तो उसे उदयचंद, उडेरोलाल, झुलेलाल की सामान्य सत्ता मिलती है और मन श्रमरहित होकर चिंतन करते-करते विश्रांति पाये तो उसकी विशेष कृपा प्राप्त होती है। इन्द्रियाँ मन के द्वारा जिसकी सत्ता से झूल रही हैं, काम कर रही हैं, वह है झुलेलाल, उडेरोलाल...''

इस अवसर पर दिल्ली दरवाजा (अमदावाद) से एक विशाल जुलूस बैंड-बाजे के साथ गणपतिजी, शिवजी, झुलेलालजी आदि के स्वाँगों के साथ 'आयो लाल झुलेलाल...' का उद्घोष करते, नाचते-गाते हुए पूज्य

गुरुदेव के श्रीचरणों में पहुँचा, जो सिंधी भाई-बहनों के चेटीचंड के आनंद-उल्लास एवं नववर्ष में प्रवेश की उमंग की खबर दे रहा था।

चेटीचंड महोत्सव के निमित्त आध्यात्मिक खजाना पाने ब्रह्मज्ञानी संत के सान्निध्य में पहुँचे इन भाग्यशालियों को संबोधित करते हुए ब्रह्मनिष्ठ गुरुदेव ने कहा : ''आपने कीर्तन-भजन किया तो पुण्य मिला परंतु उसके साथ अनंतस्वरूप का सत्संग मिला तो शांति भी मिली।

जो लोग शांति पाने की कला नहीं जानते वे बेचारे धार्मिक होते हुए भी ऐसे ही रह जाते हैं। शांतात्मा में गोता मारने की रीति प्राप्त हो जाय, फिर जप करें तो वह जप सौ गुना फलदायी हो जाता है। ऐसा जप बढ़ने से, शांति का समय बढ़ने से भाग्य की रेखाएँ बदल जाती हैं, अंतर में प्रकाश हो जाता है। शत्रु फिर तुमसे भिड़ नहीं सकता। भिड़ेगा तो आपको कुछ नहीं करना पड़ेगा, अपने-आप कुदरत ठीक कर देगी उसे। जो आपकी निंदा करता है फिर उसके ऊपर कुदरत का कहर हो जाता है। किंतु उस पर कुदरत कहर बरसाये इसलिए आपको जप नहीं करना है, आपको तो परमात्म-शांति व परमात्म-आनंद का उदय करना है।''

अमदावाद में ४ दिवसीय शिविर का समापन कर पूज्यश्री अगले ही दिन **पाटण (गुज.)** पहुँचे, जहाँ ११ व १२ अप्रैल को एवं **थराद (गुज.)** में १३ अप्रैल को सत्संग-कार्यक्रम संपन्न हुआ। इसके तुरंत बाद ही परम पूज्य बापूजी एकांतवास के लिए **सुमेरपुर (राज.)** रवाना हुए।

इस दौरान आश्रम के साधकवृंद सूखा व गरीबी से प्रभावित क्षेत्र **लांबड़िया** व **कोटड़ा (गुज.)** में सेवारत रहे। उल्लेखनीय है कि इन दोनों क्षेत्रों एवं देश के अन्य कई सूखा व अभाव ग्रस्त इलाकों में ३ अप्रैल २००४ से आश्रम की ओर से जपयज्ञ का कार्यक्रम चल रहा है। इसके अंतर्गत जपयज्ञ केन्द्रों में सुबह से शाम तक जप-कीर्तन-भ होता है, दोपहर में भोजन दिया जाता है और शाम को व्यक्ति २० रुपये नकद दक्षिणा दी जाती है।

१७ अप्रैल को पूज्यश्री सुमेरपुर से उक्त दोनों क्षे पहुँच गये, जहाँ भजन-कीर्तन के साथ भोजन-समारं हो रहा था। पूज्य बापूजी को अपने बीच पाकर भंड आये हुए हजारों-हजारों गरीबों व आदिवासियों के अ का ठिकाना न रहा। पूज्यश्री के प्रत्यक्ष निर्देशन में उ वस्त्र, बर्तन, मिठाइयाँ, दूध के पैकेट व अन्य ख सामग्रियों के साथ आम, अंगूर आदि भी बाँटे गये।

गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन कर रहे, धन दृष्टि से गरीब पर दिल से अमीर वे सभी सायंकाल में अ दिलों में अंतर्बाह्य तृप्ति का अनुभव करते हुए एवं अहो से भरकर अपने-अपने घरों की ओर रवाना हुए। यहाँ पूज्यश्री पुनः सुमेरपुर पहुँचे। रात्रि-विश्राम के पश्च प्रातः **पाली (राज.)** पधारे, जहाँ १८ व १९ अप्रैल सत्संग-कार्यक्रम संपन्न हुआ। नगर के बांगड़ विद्या प्रांगण में आस्था व श्रद्धा की लहरें उमड़ पड़ीं। रामनवमी पावन पर्व के दिन पूज्य बापूजी का पावन सत्संग-द पाकर पाली व आस-पास के इलाके के लोग निहाल उठे।

२१ व २२ अप्रैल के दो दिन सूर्यनगरी **जोधपुर (राज** के नाम रहे। इन दो दिनों में सूर्य की कड़कती धूप कम हो वातावरण में नरमी रही। जहाँ एक ओर परम पूज्य बापू की हृदयस्पर्शी अमृतवाणी संसाररूपी दावानल से द जनसमुदाय को आत्मिक शीतलता प्रदान कर रही थ वहीं दूसरी ओर सूर्यनारायण ने भी रियायत बरतते अपनी तीक्ष्ण किरणों को समेटकर तन को शीतलता का रुख अपनाया।

पूज्यश्री के आगामी सत्संग-कार्यक्रम

दिनांक	स्थान	संपर्क
१ से ३ मई (प्रथम दिन शाम ७-३० से श्री सुरेशानंदजी द्वारा)	सेवा समिति, रामबाग, इलाहाबाद (उ.प्र.)।	(०५३२) २५६०१११, ९४१५२१८०३६.
३ से ५ मई (प्रथम दिन शाम ७ से श्री सुरेशानंदजी द्वारा)	B.H.U. स्थापना स्थल, वाराणसी (उ.प्र.)।	(०५४२) २२०८८९०, ९४१५२०३२५३.
७ व ८ मई	गाँधी मैदान, पटना (बिहार)।	९३३४१२४४५६, ९४३१०२०२८६.

मीरा जैसी भक्ति हमें देना । शबरी जैसी प्रीति हमें देना ॥ जीवन जीने की कला देना । राम और कृष्ण सा आधार देना ॥
पाली (राज.) के सरल स्वभाव श्रद्धालुओं की मुखमुद्रा उनके इन्हीं हार्दिक भावों को दर्शा रही है ।
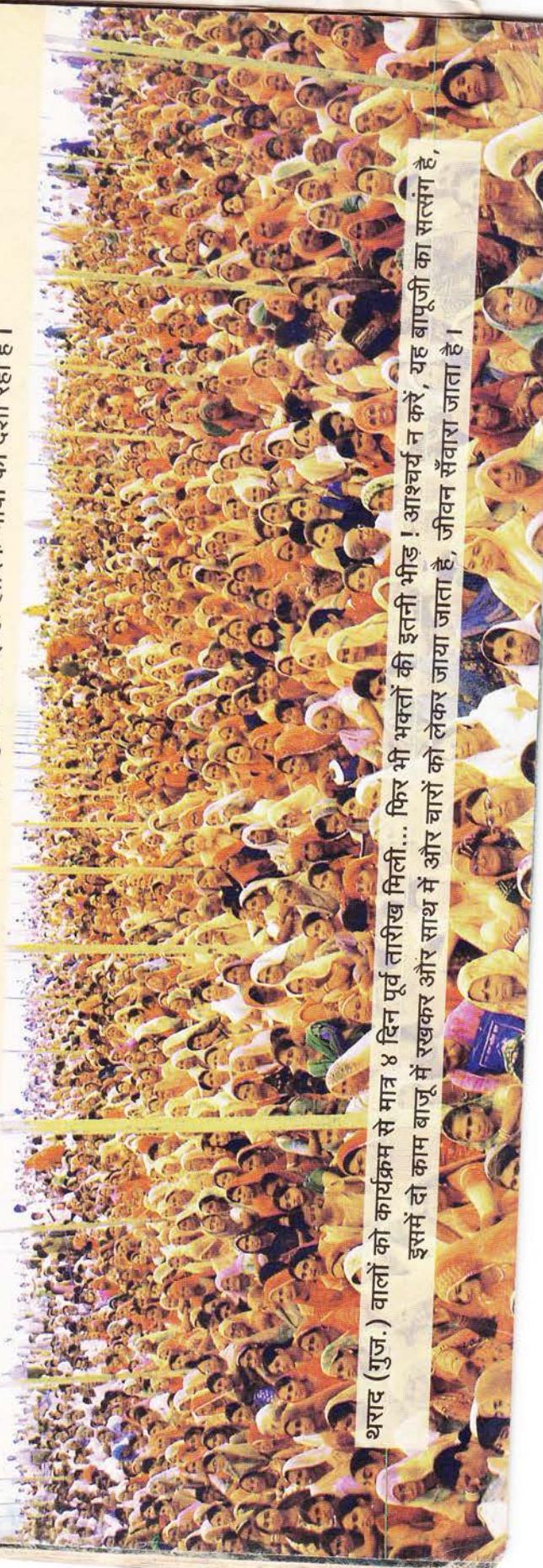
थराद (गुज.) वालों को कार्यक्रम से मात्र ४ दिन पूर्व तारीख मिली... फिर भी भक्तों की इतनी भीड़ ! आश्चर्य न करें, यह बापूजी का सत्संग है,
इसमें दो काम बाजू में रखकर और साथ में और चारों को लेकर जाया जाता है, जीवन सँवारा जाता है ।

चेटीचंड शिविर, अमदावाद

सद्गुरुदेव का दर्शन पाकर शिविरार्थी भाव-विभोर हो उठे।

योगासन (१), वक्तृत्व (२,३) व गुर्वष्टकम्-पाठ (४) की प्रतियोगिताओं में प्रथम स्थान-प्राप्त विद्यार्थी शिविरार्थी पूज्य बापूजी के करकमलों से पुरस्कार प्राप्त करते हुए। (विद्यार्थी शिविर, अमदावाद)

पूज्य बापूजी से आध्यात्मिक शक्तियों को जागृत करने के सरल यौगिक प्रयोग सीखते हुए शिविरार्थी। (अमदावाद)

पाटण (गुज.) के सत्संग-कार्यक्रम में सत्संग-श्रवण में तल्लीन श्रद्धालु।

* R.N.I. NO. 48873/91 POSTAL REGISTRATION NO. GAMC-1132 LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENSE NO. 207(DATE OF ISSUE 22-5-2003 & VALID UP TO 31-12-2005), POSTING FROM AHMEDABAD 2-15 OF EVERY MONTH. * MBI PATRIKA CHANNEL, MUMBAI-101, WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO. NW-9 REGD NO. TECH/47-833/2003-05 POSTING FROM MUMBAI 9 & 10th OF EVERY MONTH. * FOREIGN POSTING 5 & 6 OF EVERY MONTH FROM AIRPORT PO. - 400099. * DELHI REGD. NO. DL-11513/2003-05 WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO. U(C) 232/2003-05 POSTING FROM DELHI 5-6 OF EVERY MONTH.